Library IIAS, Shimla
S 491.26 K 897 V
00031782

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६९

श्रीकृष्णभट्ट-कविकलानिधि-गुम्फिता

वृत्तमुक्तावली

प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

ASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

S
491.26
K 897 V

491.26
K 897 V

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६६

श्रीकृष्णभट्ट-कविकलानिधि-गुम्फिता

वृत्तमुक्तावली

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ६६

श्रीकृष्णभट्ट-कविकलानिधि-गुम्फिता

वृत्तमुक्तावली

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

श्रीकृष्णभट्ट-कविकलानिधि-गुम्फिता

वृत्तमुक्तावली

सम्पादक

कविशिरोमणि भट्ट श्रीमथुरानाथजी शास्त्री

साहित्याचार्य

प्राक्कथन-लेखक

प्रो० एच० डी० वेलणकर

अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, विश्वविद्यालय, बम्बई

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२० | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५ | ख्रिस्ताब्द १९६३

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य- ३.७५

मुद्रक- श्री हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर ।

विषय - सूची

पृष्ठाङ्क

सञ्चालकीय वक्तव्य
प्राक्कथन (Foreword)—प्रो० एच० डी० वेलणकर
परिचय-लेख (Introductory Note)—श्री कलानाथ शास्त्री, एम. ए., साहित्याचार्य
प्रारम्भिकं निवेदनम्—सम्पादक
छन्दसामकारादिवर्णानुक्रमसूची ... १-६
विषयानुक्रमः ... ७-१३
वृत्तमुक्तावली ... १-७६
प्रथमो गुम्फः ... १-१८
द्वितीयो गुम्फः ... १८-३६
तृतीयो गुम्फः ... ३६-७६

Indian Institute of Advanced Study
No. 31782
12-6-67

S
491.26
K897Y

Library IIAS, Shimla
S 491.26 K 897 V
00031782

संचालकीय वक्तव्य

छन्दःशास्त्र वेदाङ्ग है और वैदिक ऋचाओं एवं सूक्तों को सम्यक्तया समझने के लिए इस शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। विश्वसाहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद सूक्तों में है। जिन ऋषियों ने इन सूक्तों की रचना कर के इनका गान किया उनको अवश्य ही इनकी छान्दस अभिव्यक्ति एवं संगीत के नियमों का विशिष्ट ज्ञान रहा होगा। सामवेद के सूक्त-गान से विदित होता है कि इनकी रचना के समय कर्ण-सुखद अक्षर-पद-योजना की कोई न कोई विकसित विधा प्रयोग में आई थी। ऋग्वेद की छान्दस-सामग्री से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इसके सूक्तों के विभिन्न रचनाकाल में नए-नए छन्दों का आविष्कार होता रहा है। तत्तत् ऋषियों ने पूर्व प्रचलित छन्दों में रचना करने के साथ-साथ नवीन छन्दोयोजना का भी निर्माण किया। उनका विश्वास था कि उनके द्वारा रचित नवीन छन्दोविधान से देवताओं को अधिकाधिक प्रसन्नता होगी।

सामवेदीय निदानसूत्र, साङ्ख्यायन श्रौतसूत्र, ऋक्-प्रातिशाख्य और कात्यायनीय अनुक्रमणिका आदि में वैदिक छन्दःशास्त्र का विवेचन हुआ है। इसका आरम्भ प्रागैतिहासिक काल से सम्बद्ध है। यह समय इतना प्राचीन भी हो सकता है कि जब इण्डो-आर्यनों का पृथक्करण हो नहीं हुआ था—यदि हो भी गया था तो बस हुआ ही था।

वैदिक छन्दःशास्त्र में हमको प्राकृतिक विकास की ऐसी ऐतिहासिक शृङ्खला का ज्ञान होता है कि जिसमें सम्पूर्ण मानव-समाज ने सम्मिलित रूप से भाग लिया है और एक ऐसी परम्परा का सूत्रपात हुआ है जो किसी आदर्श के आधार पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती चली गई है तथा प्रत्येक पीढ़ी ने अपने पूर्ववर्ती समाज की देन का आस्वाद करते हुए अनुवर्तियों के लिए उसे अधिकाधिक समृद्ध करने का प्रयास किया है।

कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट-कृत वृत्तमुक्तावली की रचना भी उक्त लक्ष्य को ही दृष्टि में रख कर की गई प्रतीत होती है। इसमें वैदिक छन्दों से लेकर रचनाकार के समय तक प्रचलित प्रायः सभी वैदिक, संस्कृत और व्रजभाषा—हिन्दी छन्दों के लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। वैदिक छन्दों के अतिरिक्त सभी छन्दों के उदाहरण स्वयं ग्रंथकार द्वारा निर्मित हैं। व्रजभाषा हिन्दी छन्दों

में सफलतापूर्वक लक्षण निर्वाह करते हुए संस्कृत में रचना कर के उदाहरण प्रस्तुत करना कवि की असाधारण प्रतिभा और भाषा पर अधिकार का परिचायक है। ऐसा लगता है कि कविकलानिधिजी ने अपनी इस रचना में वृत्तकल्पद्रुम के कर्ता श्री जयगोविन्द (वाजपेयी) का आदर्श सामने रखा है जिनका इन्होंने पृ० २८ में सम्मानपूर्वक संदर्भ दिया है।[1]

श्रीकृष्णभट्ट एक सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी कवि, विद्वान् और मनीषी थे। काव्य, साहित्य, छन्दःशास्त्र, व्याकरण और वेदान्तादि विविध विषयों पर उनकी स्वतंत्र एवं अनूदित रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं और दिनों-दिन प्राप्त होती जा रही हैं। जयपुर-नगर-संस्थापक, सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, रणपंडित और विद्वान् एवं विद्वदनुग्राही ज्योतिर्विद्याविद् महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा समादृत इन महाकवि के विशिष्ट ऐतिहासिक काव्य 'ईश्वर विलास' और सुललित गंभीर पद्यनिगुम्फित 'पद्यमुक्तावली' का क्रमशः प्रकाशन प्रतिष्ठान द्वारा पूर्व में किया जा चुका है और यह 'वृत्तमुक्तावली' साहित्यसुरसिक विद्वान् पाठकों के करकमलों में अर्पित की ही जा रही है। इन तीनों और विद्वान् सम्पादक महोदय द्वारा पूर्व सम्पादित ग्रंथों एवं प्रस्तुत कृति में उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त श्रीकृष्ण-भट्ट निर्मित 'रामगीतम्' और 'प्रशस्तिमुक्तावली' नामक रचनाओं का पता और लगा है। अपर कृति की एक खण्डित प्रति प्रतिष्ठान के संग्रह में मिली है, जिसके आद्य दो पत्र अप्राप्त हैं। यदि कदाचित् यह कृति सम्पूर्ण रूप में अथवा इसके अभी अनुपलब्ध दो पत्र प्राप्त हो सके तो कविकलानिधिजी की इस सरस एवं वल्लभ-सम्प्रदायान्तर्गत पत्र-शिष्टाचार-पद्धति-परिचायक रचना का भी सहृदय साहित्यानुरागियों को आस्वाद कराने का सुअवसर प्राप्त हो सकेगा।

श्रीकृष्ण भट्ट की रचनाओं के प्रति संस्कृत के विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम हमारे सम्माननीय मित्र सुविख्यात भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना के ग्रन्थ-संग्रहाध्यक्ष कीर्तिशेष परशुरामकृष्ण गोड़े महोदय ने आकृष्ट किया था। उन्होंने प्रस्तुत वृत्तमुक्तावलीगत महाराजा सवाई जयसिंहजी द्वारा जयपुर नगर की संस्थापना और अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान-सम्बन्धी पद्यों के उद्धरण दे कर सिद्ध किया है कि वास्तव में इस यज्ञ का विधि-विधानयुक्त सम्पादन हुआ था। वृत्त-मुक्तावली का रचना-काल ईश्वरविलास से पहिले का है क्योंकि इसकी रचना जयपुर की संस्थापना और अश्वमेधयज्ञानुष्ठान के अनन्तर हुई थी जिनकी तिथियां क्रमशः १७२८ ईस्वी और १७३२ ईस्वी मानी गई हैं। सवाई जयसिंह

[1] आॅफ्रेट, कैटलॉगस कैटलॉगरम्, भा. २; पृ. ५६६।

का निधन-समय १७४३ ईस्वी है। अतः वृत्तमुक्तावली १७३२ और १७४३ ई. के बीच में किसी समय रची गई होगी जब कि ईश्वरविलास की रचना १७४३ या १७४४ ईस्वी में सवाई ईश्वरीसिंह के राज्यारोहण के उपरान्त आरंभ हुई। इसके अतिरिक्त वृत्तमुक्तावली में सवाई जयसिंह द्वारा हिन्दुओं को जजिया कर से मुक्त कराने का भी उल्लेख निम्न पद्य में प्राप्त होता है जो इतिहासज्ञों द्वारा समसामयिक साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है—

"जातोज्जागर 'जेजिया' भिधकरस्तोमात्तभूमीरस-
प्रस्फूर्जद्यवनेन्द्रभास्वति कलिग्रीष्मेऽतिभीष्मे नृणाम्।
भाग्यैर्यः प्रविराजतां प्रमुदितोऽजस्रं सहस्रं समाः
सद्यः स्वोदयसंहृताऽखिलविपत्पीयूषपाथोधरः ॥५"—वृ.मु.

अतः प्रस्तुत रचना का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, साथ ही इससे प्राप्त ऐतिहासिक सङ्केत भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

रचयिता ने द्वितीय गुम्फ के अन्त में वृत्तमुक्तावली का अपर नाम 'छन्दोमुक्तावली' भी लिखा है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि श्रीकृष्णभट्ट वृत्तमुक्तावली से पूर्व बूंदी के राव अनिरुद्धसिंह के पुत्र राव बुद्धसिंह हाड़ा की प्रार्थना पर 'वृत्तचन्द्रिका' नामक अपर छन्दोग्रन्थ की रचना व्रजभाषा में कर चुके थे। राव बुद्धसिंह स्वयं एक काव्य-प्रेमी और कवि नरेश थे। इनका एक रीति-ग्रन्थ नेहतरंग भी प्रतिष्ठान से पिछले वर्षों में प्रकाशित किया जा चुका है।

हमें दुःख है कि श्री पी.के. गोड़े, जो कविकलानिधि-साहित्य के अन्वेषक एवं उद्घाटक थे और उनके ग्रन्थों के प्रकाशन में जिनका हमें पूर्ण सहयोग प्राप्त था, इस वृत्तमुक्तावली के प्रकाशन से पूर्व ही 'इह-वृत्त' से मुक्त हो गये।

यह भी एक मणिकाञ्चन योग है कि कविकलानिधिजी के ग्रंथों का सम्पादन कविशिरोमणि भट्टश्रीमथुरानाथजी शास्त्री, साहित्याचार्य द्वारा हुआ है जो ग्रंथकार के सीधे वंशज होने के अतिरिक्त सम्प्रति संस्कृत-साहित्य-जगत् में रससिद्ध कविशिरोमणि एवं विश्रुत वयोवृद्ध विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह और भी सन्तोष और प्रसन्नताका विषय है कि श्रीभट्टजी के ज्येष्ठ चिरंजीव प्रो० कलानाथ शास्त्री, एम० ए०, साहित्याचार्य भी अपने पिताश्री के पद-चिह्नों पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो रहे हैं। दोनों ही श्रीशास्त्रीजी और उदीयमान कलानाथजी ने क्रमशः अपने-अपने संस्कृत और अंग्रेजी-भाषा-निबद्ध वक्तव्यों में छन्दःशास्त्र, 'वृत्तमुक्तावली' की हस्तप्रति की उपलब्धि एवं ग्रंथकार के जीवन और कर्तृत्व-विषयक तथ्यों पर सम्यक् प्रकाश डाला है जो साहित्य-मर्मग्राही विद्वानों एवं अनुसंधित्सु अध्येताओं के लिए परमोपयोगी है।

जिस समय पुस्तक का मुद्रण समाप्त हुआ तो कुछ समय के लिये श्रीभट्टजी वार्द्धक्य के कारण अस्वस्थता का अनुभव कर रहे थे। तब हमने अपने सहयोगी विद्वान् मित्र श्री एच० डी० वेलणकर, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बम्बई विश्व विद्यालय को इस उपयोगी पुस्तिका की भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया। श्रीवेलणकरजी छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञ अधिकारी विद्वान् हैं। इन्होंने हमारा अनुरोध स्वीकार कर आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ हम प्रतिष्ठान की ओर से धन्यवाद अर्पित करते हैं। बाद में, कुछ स्वस्थ होने पर सम्पादक महोदय ने एवं उनके ज्येष्ठ तनुज श्रीकलानाथजी ने भी अपने अपने वक्तव्य भेजे जिनको अग्रिम पृष्ठों में पाठक-वृन्द पढेंगे।

आशा है, राजस्थान-निवासी विद्वान् कवि द्वारा राजस्थान में प्रणीत और राजस्थान के विद्यमान विद्वद्वरेण्य ग्रन्थकृद्वंशजों द्वारा संपादित एवं राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित इस उपयोगी पुस्तक से विद्वज्जन लाभान्वित होंगे।

आषाढ़ीपूर्णिमा;
संवत् २०२०

मुनि जिनविजय

FOREWORD

Ancient Indian metres are broadly divisible into three main classes: (1) Akṣara Vṛttas, (2) Varṇa Vṛttas and (3) Mātrā Vṛttas. In Akṣara Vṛttas the metrical unit is an Akṣara, whether short or long, and the classification of the metres is based on the number of the Akṣaras in a stanza. A stanza is usually divisible into three or four Pādas. Vedic Vṛttas are Akṣara Vṛttas and three main varieties of these are Gāyatrī, Triṣṭubh and Jagatī. The Gāyatrī stanza has three Pādas of 8 Akṣaras each, while the Triṣṭubh and the Jagatī stanzas have four Pādas each, those of the former having 11 and these of the latter having 12 Akṣaras in each of them.

The Varṇa Vṛttas are really derived from the Vedic Akṣara Vṛttas but the basis of their metrical music is not merely the number of intonated and accented Akṣaras as in the Vedic Akṣara Vṛttas, but also a variation of short and long Akṣaras coming one after the other, in different order. The tendency towards such a variation is already noticeable in the Vedic Vṛttas, but it was not recognised as a source of metrical music as clearly as it was in the classical period. The metres in classical Sanskrit poetry are almost all of them Varṇa Vṛttas; they depend both upon the number of the Akṣaras which their Pādas may contain and also upon the type of variation of the short and the long Akṣaras employed in them. The starting of such metres is rightly attributed by Bhavabhūti in his Uttara-Rāma-Carita to the Ādi Kavi, Vālmiki. The first metre of this type is the Anuṣṭubh S'loka, which is the ruling metre of the Rāmāyaṇa.

The third variety of the ancient metres is the Mātrā Vṛattas. The basis of the metrical music in these metres is a Mātrā, which is a unit of the syllabic content in an Akṣara. According to this principle of syllabic content, a short Akṣara contains one Mātrā and the long one contains two Mātrās' as their syllabic content. This principle was already recognised in the Prātis'ākhyas though its employment as the basis of metrical music was left to the Sanskrit prosodists who made use of the purely Prākṛita metres for their Sanskrit compositions.

Naturally neither the number of Akṣaras nor the particular order in which the short and long ones in them follow each other is of any consequence in these metres. Their Pādas must contain the prescribed number of Mātrās, which may be made up in any way, with the following two broad exceptions : (1) these Mātrās must be divisible into smaller groups of three to seven Mātrās; (2) no long letter must occur at the junction of these smaller groups, i.e. it must not combine in itself the last Mātrā of an earlier group, and the initial Mātrā of the following group, thus keeping the two groups mutually distinguished and independent. It is on account of this latter rule that a mere adding of a required number of Mātrās cannot give us the particular metre. It also serves as the principle of division in the case of Metres having the same number of Mātrās in each of their Pādas.

These Mātrā-Vṛattas are turned into Tāla Vṛattas in the hands of the Prākṛta and the Apabhraṁs'a poets of the middle ages. An additional type of metrical music is employed in them; it depends upon the Tāla or a recurring stress controlled by the Kāla-Mātrā. A Kāla-Mātrā is that portion of time which is normally taken by the pronounciation of a short Akṣara and thus corresponds to the older Akṣara Mātrā. A Pāda of these metres is similarly divisible into several groups of such Kāla Mātrās, which may contain from 4 to 7 Mātrās in each; but the principle of Tāla requires that a line or Pāda must be made up of the same type of group or groups whether of 4, 5, 6, or 7 Kāla-Mātrās. The Kāla Mātrās in any one of these groups may be made up normally by employing Akṣaras which yield a corresponding number of the Akṣara Mātrās; but this is not absolutely necessary and this is the characteristic of the popular Apabhraṁs'a poetry and the poet may employ at will Akṣaras which will normally yield a smaller or larger number of Akṣara Mātrās, provided these yield the required number of Kāla Mātrās in their pronounciation. This is done by pronouncing short Akṣaras long and vice versa, as also by continuation of the sound of the earlier Akṣara for making up the required number of the Kāla Mātrās, without employing any new Akṣara at all. The above mentioned rule No. 2 in the case of the Mātrās Vṛttas is strictly applicable even here and a long letter must not be employed at the junction of the two groups of Kāla Mātrās, combining in itself the

Kāla Mātrās of an earlier group and the initial Kāla Mātrā of the following group. Many of the metres defined in the *Prākṛta Paiṅgala* are, as a matter of fact, Tāla Vṛattas, though they are included under Mātrā of the Varṇa Vṛttas, and are not recognised as such either by the *Prākṛta Paiṅgala* or any other prosodist who defines them. Sanskrit and Prākṛta prosodists do not show any consciousness of the principle of Ṭāla as a source of metrical music and consequently do not admit a distinct class of Tāla Vṛttas, in their manuals and treatises. Our author is, of course, no exception to this.

In the work before us, namely the *Vṛtta Muktāvalī*, the author who is also a poet of high poetical merit, has treated all these three or rather four kinds of metres; but he does not divide them into Sanskrit and Prākṛta, (or Sanskrit, Prākṛta and Apabhraṁs'a as Hemacandra has done) metres, and treats all of these as Sanskrit metres only, giving illustrations composed by himself in the case of the non-Vedic metres. The work is divided into three Gumphas or chapters; in the first, Vedic metres are treated with illustrations, on the basis of Piṅgala's *Chandas-Sūtra* Adhyayas 2-4. The second Gumpha is devoted to the Mātrā Vṛttas; it begins with the Gāthā and its divisions and derivatives; they are then followed by the other Mātrā Vṛttas of 4 and 6 Pādas constituted with the different Mātrā Gaṇas mentioned above. In his *Chandas-Sūtra* Piṅgala has defined and employed only one Mātrā Gaṇa, namely, the Caturmātrā; but our author following the lead of the *Prākṛta Paiṅgala* has employed now and then even the other Mātrā Gaṇas in formulating his definitions of more than 30 Mātrā Gaṇas. Our author has closely followed the *Prākṛta Paiṅgala* in selecting and defining these Mātrā Vṛttas, but as said above, has treated all of them as Sanskrit Mātrā Vṛttas. In the third Gumpha the author defines and illustrates the Varṇa Vṛttas; here too he has generally followed the *Prākṛta Paiṅgala*.

The author, Shrī Kṛṣṇabhaṭṭa of the Tailanga Kula was patronised by King Jayasimha (perhaps the same as Sawāi Jayasiṁha, see v-257) of Jaipur, who bore the title of Rājādhirāja (cf. vv. II. 3,6,7,31 etc.) and ruled over the state during 1699-1743 A.D. Some of the illustrations refer to this patron in highly eulogising terms but generally

they contain the praise of either S'ri Kṛṣṇa i.e. Vāsudeva Kris'ṇa or S'ri Rāma i.e. Dās'arathī Rāma. A scholar called Jayagovind Vājapeyi is mentioned respectfully as an authority in respect of a metrical practice on II.24.

The author is undoubtedly a poet of a high order; his illustrations are composed in a delightfully lucid style, in spite of a sort of artificiality which had to be introduced in view of the metrical needs of a definition. It can be recommended to the reader both as a manual of prosody and as a small poem.

H. D. VELANKAR
Professor of Sanskrit and Head of the
Department of Sanskrit,
University of Bombay

INTRODUCTORY NOTE

(Kalanath Shastry, M.A., Sahityacharya)

The वृत्तमुक्तावली of Shri Krishna Bhatta needs no apology for its publication inspite of the fact that there are many other published works on Sanskrit prosody, as it marks a pointedly keen distinction from all other books extant in this field. It does not confine itself to the treatment of classical Sanskrit metres and their divisions only. It is intended to be a valuable reference book of prosody giving detailed definitions and illustrations of the Vedic and Classical Sanskrit metres of 'The Varnik system', 'Prakrit Gathas' and 'Vraj Bhasha' measures of 'the Matrik system' and 'the Dandakas' (longer metres) of Sanskrit and Vraj Bhasha. Its first chapter deals with the nature and divisions of the Vedic metres, their definitions and examples. The second chapter discusses at length the Gathas of Prakrit and metres of Vraj Bhasha giving their definitions and illustrations in Sanskrit. The author has Sanskritised the names of some Vraj Bhasha metres. He calls 'दोहा' as 'द्विपथा'[1], 'छप्पय' as 'षट्पद'[2] and 'सोरठा' as 'सौराष्ट्र'[3]; others which could be derived according to Sanskrit grammar have been accepted in original. The third chapter deals with the classical Sanskrit metres and the longer 'Dandakas'.

The Vraj Bhasha Metres

The author, in this way, has tried to make the collection as much exhaustive as possible. Other Sanskrit books on metrics popularly known among the scholars deal with the classical Sanskrit metres only. But Krishna Kavi, perhaps for the first time, includes all the Vedic metres and the verse forms of Vraj Bhasha also extant in his time. He discusses as many as 42 Vraj Bhasha metres (pp. 23-36) and gives as illustrations verses composed by himself.

This is an unmistakable evidence of the fact that towards the beginning of the 18th century the interpenetration of the literary

---

[1] p. 23. [2] p. 25. [3] p. 29

trends and styles of Sanskrit and Vraj Bhasha was manifesting itself. As Vraj Bhasha freely borrowed from Sanskrit the metrics, rhetorics, principles of criticism and theory of emotions, Sanskrit also, in turn, was abundantly influenced by the trends and currents of style in Vraj Bhasha. There were some Sanskrit poets in North India who advocated experimenting on the measures of Vraj Bhasha also in Sanskrit language. The later Sanskrit poets were influenced by this apology for new experiments in verse forms of Vraj Bhasha which had been, by that time, interprovincially accepted as a medium of poetic expression.

Shri Krishna Bhatta himself was one of such poets. He represents a confluence of Sanskrit, Prakrit and Vraj Bhasha poetry.[1] Though originally belonging to Andhra Pradesh he had settled in North India and had cultivated an astonishing command in Vraj Bhasha also. Being closely associated with the editing and publication of his works I have often wondered at the equal amount of felicity that he displays in composing Sanskrit and Prakrit poems in a wide variety of metres and writing chaste Vraj Bhasha in its '*Ghanakshari*' and other stock-metres, keeping up their characteristic swing and rhythmic quality. Shri Gopal Narain Bahura of the Rajasthan Oriental Research Institute has recently discovered the MS. of a 'Geetikavya' (Lyrical poem) by him entitled '*Ram Geetam*' which evidences the poet's lyricism also. This excellence in poetry coupled with a high order of scholarship in Vedic Philosophy, Meemamsa, Vedanta, Grammar and other branches of learning make Shri Krishna Bhatta an extraordinarily erudite intellectual of his time.

This leads me to another striking quality of this work. The author follows the plan of illustrating all the metrical forms, except the Vedic ones, by verses composed by himself rather than quoting from the classics. This practice has stood him in good stead particularly in the Vraj Bhasha metres to find illustrations of which anywhere in Sanskrit poetry was not only difficult but impossible. It goes without saying that no one but a poet of Krishna Kavi's stature

He is the author of 'अलंकार कलानिधि' (Rhetorics), 'साँभरयुद्ध', 'जाजऊयुद्ध' etc. in व्रजभाषा. *Vide* 'ईश्वरविलासमहाकाव्यम्' (Rajasthan Oriental Research Institute), Introd. p. 49.

could readily compose verses in such a wide variety of verse forms. The poet seems to be at his best in longer forms of Sanskrit and Hindi metres. His 'स्रग्धरा' is remarkable, his 'सवैया's[1] are sweet and 'दण्डक'[2]s musical.

The Manuscript

The credit of discovering the MS. of the book goes to late Prof. P. K. Gode, Curator of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona. Prof. Gode got interested in Shri Krishna Kavi, the author of this work and another historical epic 'ईश्वरविलासमहाकाव्यम्', while searching for contemporary evidence to prove the performance of the Asvamedha Sacrifice at Jaipur by Maharaja Sawai Jai Singh of Amber (A.D. 1699-1743). Supporting his thesis by quotations from the 'Ishvaravilasa Mahakavya', he established the historicity of the tradition about the Asvamedha Sacrifice by the Maharaja and also introduced the author of this work to the scholars by publishing a paper in the Bharata Itihasa Samshodhan Mandal Quarterly (1941).[3] Incidentally he came across manuscripts of other works by the same author in the Govt. MSS. Library at the B.O.R. Institute, Poona, the 'Vrtta Muktavali' being one of them. In 1944 he published a paper in 'the Indian Culture' Vol. XI No. 1 (July - September, '44) introducing 'Vrtta Muktavali, a rare Sanskrit work by Krishna Kavi, the court poet of Sawai Jai Singh (A.D. 1699-1743).

In the Govt. MSS. Library, Poona, there are two MSS. of the 'Vrtta Muktavali', the first representing the first chapter and the second the 2nd and 3rd. Prof. Gode, in his paper, describes these manuscripts as follows :

"Aufrecht[4] records some MSS. of a work on prosody of the title

---

[1] p. 62. [2] p 66.

[3] Vol. XXII, pp.15-23, entitled 'Krishna Kavi, the author of 'Ishvaravilasa Kavya'—His works and descendants, Between A. D. 1669 and 1760'.

[4] C C II, 142—'वृत्तमुक्तावली' metrics by Kṛṣṇa Paṇḍita', Rgb. 551 (inc.) (=No. 551 of 1884-87).
CC III, 125—'Peters 5.455.' This MS. is missing in the Govt. MSS. Library since 1908. It is No. 455 of 1892-95 called छन्दोवृत्तमुक्तावली. I am not sure if this work was composed by Kṛṣṇa Kavi.

—Footnote by Prof. Gode.

'वृत्तमुक्तावली' by Kṛṣṇa Kavi. One of these MSS. is No. 551 of 1884-87 in the Govt. MSS. Library at the Bhandarkar O. R. Institute, Poona. It appears to be a work dealing with Vedic metres by 'श्रीकृष्णकवि' as stated in the colophon of the MS. The MS. represents the first chapter called 'प्रथम: गुम्फ:' of the 'वृत्तमुक्तावली'.

There is another MS. of the 'वृत्तमुक्तावली' by 'श्रीकृष्णकत्रि', viz. No. 487 of 1899-1915 in the Govt. MSS. Library. This MS. was not known to Aufrecht and it is important as it seems to represent the second chapter (द्वितीय: गुम्फ:') of this work, judging by the identity of the names of the authors, titles and names of divisions of the two works, viz. श्रीकृष्णकवि, वृत्तमुक्तावली and गुम्फ respectively occurring in both the MSS. The first MS. furnishes no historical information about its author or his patron and hence it may be left out of our consideration for the present".

I should hasten to add here that the second manuscript referred to here represents not only the 2nd but also the 3rd chapter of the book. These MSS. were made available from the Govt. MSS. Library, Poona to the editor (Bhatt Mathuranath Shastri) by late Shri Hari Narain Purohit, B.A. of Jaipur. It was a pleasant discovery for him (the editor) as in his ancestral records there was no trace of this book on metrics written by Krishna Kavi, his own forefather.[1] The MS. which had many transcriptional errors was copied by the editor himself who amended the readings of the manuscript and presented it for publication before the Rajasthan Oriental Research Institute.

By bringing to light this work of an eminent Sanskrit scholar of Rajasthan, the Rajasthan Oriental Research Institute and its learned Director have made all the scholars of Indology indebted to them.

[1] Another book on metrics entitled 'वृत्तचन्द्रिका' (in Vraj Bhasha) *is* reported to have been found with a Chaturvedi family of Mathura by Dr. Shyam Sunder Das (Vide his Report).

प्रारम्भिकं निवेदनम्

काव्यकल्पनाकार, कृपयतु मयि तेजः किमपि ।
मनसि चकास्तु चारु–चरणसरोरुहरेणवः ।।

सुरसरस्वत्याः साहित्ये छन्दसां, तद्विवेचनपरस्य छन्दःशास्त्रस्य च किं नाम महत्त्वमिति कस्य वा सचेतसो बोधनीयं स्यात् ? ''छन्दः पादौ तु 'वेदस्ये' त्युद्घुष्य निखिलवाङ्मयमुकुटायमानस्य वेदस्याङ्गत्वेन छन्दःशास्त्रस्यावश्यपठनीयत्वं प्रसेधितमासीदार्यमनीषिभिः । वैदिकसाहित्यस्याधिकतमो भागश्छन्दोनिबद्ध इति तु सुविदितमेव सुधियाम् । अत एव हि वैदिकसाहित्यस्य नामैव 'छन्द' इत्यभिधीयते स्म पुरा । 'छन्दसि' 'लोके' इति भेदकशब्दाभ्यां वैदिकलौकिकसाहित्ययोरभिधानं क्रियते स्म । वेदे हि येषां छन्दसामुपयोगोऽस्ति तेषां लोके प्रचारः कथमारब्धः, कथं चान्यान्येषामपि छन्दसां लोके सृष्टिरभूदित्येतद् वाल्मीकीयरामायणेऽनुष्टुप्छन्दसो वाल्मीकिमुखान्निर्गमनकथया ज्ञायते । तमसानदीतटे विचरतस्तस्य क्रौञ्चमिथुनादेकस्मिन् व्याधशरविषयतामापन्ने तमनुशोचन्त्याः क्रौञ्च्याः शोकविह्वलतां वीक्ष्य कारुण्योद्गारः श्लोकरूपेण मुखान्निर्गत इति कथा तथ्यस्यास्योद्बोधिका यन्मानसानां भावानामावेगेनोत्थापितानामुद्गाराणामभिव्यक्तिवाञ्छा छन्दसो जन्मदात्री लोके । तदेवाभिहितं कविकुलगुरुणा कालिदासेन—

'तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी मुनिः कुशेध्माहरणाय यातः ।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।।'

परिमिताक्षरपदामिमां भारतीं 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्' इत्युक्तवतो वाल्मीकेर्मनसि कौतूहलविस्मयावुदभूताम् । 'कुतोऽयं वेदादितरत्र छन्दसोऽवतारः' इति । किन्तु ब्रह्मणाऽऽदिष्टोऽसौ—'श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा । × × × रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु ।' × × × तदेवं लोके सर्वादिमस्य छन्दसः काव्यस्य चावतारोऽभूत् । आदिमेऽप्यस्मिन् काव्ये न केवलं श्लोकस्य (अनुष्टुभः), अपि तूपजातिपुष्पिताग्रावंशस्थादीनामनेकेषां छन्दसामुपयोग इति वृत्तभेदानामियत्त्वरितं लोकप्रियतामेव पिशुनयति ।

छन्दसः कविकर्मणा सम्बन्धः—छन्दसो लोके समारम्भानन्तरं तस्य लोकप्रियता नूनमनेनैवानुमातव्या यच्छास्त्राणि, विज्ञानानि, कोषादयः सर्वेऽपि विषया-

श्छन्दोनिबद्धा एव शोभन्त इति प्रावर्त्तत विदुषां परम्परा । दर्शनम्, ज्यौतिषम्, आयुर्वेदः, व्याकरणं, कोषः यदेव विलिख्येत, आहोस्विदेतदाद्योपान्तं छन्दोबद्धं भवेदथवाऽऽद्यन्तयोस्तु नियतमेव तत्र श्लोका विलिख्येरन् । यः श्लोकं रचयितुं न जानाति स्म स नासीदक्षरमुखत्वेनावबुद्ध इति लोकप्रवृत्तिरासीत् । अत एवान्यान्यशास्त्रलेखका ये वराकाः सर्वथा कवित्वबीजभूतसंस्कारलेशशून्या अभूवन् ते 'कुर्वेऽहन्तु यथामति' 'शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्' इत्यादि विलिख्यैवाद्यन्तयोर्मङ्गलं कुर्वन्ति स्म ।

काव्यक्षेत्रे तु छन्दोयोजनापाटवं प्राथम्यमेवाऽभजत् । प्रस्तारक्रमेणाऽऽविर्भूतानामनेकेषां वृत्तभेदानां सृष्टिरभूत् । तत्राऽपि विविधविषयानभिव्यञ्जयितुं तत्तदनुकूलानां वृत्तजातीनां प्रयोगे प्रौढिः स्वारस्यं चेति काव्यशास्त्रमर्मज्ञानां परम्पराः प्रासरन् । छन्दो न खलु बाह्या सामग्री, अपि तु विषयमभिव्यञ्जयितुं, रसोद्रेके प्राबल्यमास्थापयितुं, वातावरण—वर्ण्यसामग्र्यादीनामानुकूल्येन रसचर्वणायाः सौहित्यमाधातुं तदिदमतीवोपयोगि, आभ्यन्तरमङ्गमिति घण्टाघोषः कविकुलनेतॄणां प्रासिध्यत् । 'कविकण्ठाभरण'—'सुवृत्ततिलका'दिग्रन्थानां प्रणेत्रा क्षेमेन्द्रेण साधितं यत्—'प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता प्रशस्यते ।' करुणवर्णने वियोगिनी वैशिष्ट्यमावहति, देवभावस्य संवर्धने शिखरिणी शोभते, उत्पात–वात्याऽऽदीनां प्रकटनाय स्रग्धरा सौन्दर्यमादधाति इत्यादि । ता एताः कविपरम्परास्तत्तद्वृत्तनिबद्धानां महाकविकर्मणां तत्तत्क्षेत्रेष्वतिशयमावहतां पदाङ्केष्वेव निर्मिता इति प्रकटमेव । मेघदूते मन्दाक्रान्तायाः सौन्दर्यातिशयं वीक्ष्य 'प्रावृट्प्रवासव्यसन' चित्रणे तस्या आनुकूल्यं नियतीकृतम्, कुमारसम्भवे (रतिविलापप्रसङ्गे 'गत एव न ते निवर्त्तते स सखा दीप इवाऽनिलाऽऽहतः । अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ।' इत्यादि) वियोगिनीवृत्तानां सौभगेन करुणवर्णने तस्या आनुकूल्यमापादितम्, भवभूतेः, शंकराचार्यस्य, पण्डितराजजगन्नाथस्य च देवविषयरतिभावमुद्व्यञ्जयतां शिखरिणीच्छन्दसां सौन्दर्यमवलोक्य शिखरिण्या देवभावानुकूल्यं प्रसिद्धमभूत् ।

हिन्दीच्छन्दःस्वपि 'बरवै' सदृशानां कतिपयानां जन्मैव विरहादिविशिष्टपरिस्थितिष्वभूदिति तत्तद्रसोद्रेके तेषामतिशयः प्रसिद्धोऽभूत् । सुप्रसिद्धमिदं हिन्दीकविसम्प्रदायेषु यद् बरवैछन्दसो जन्मैव नवाबखानखानासमये वियोगविह्वलायाः क्षत्रियवध्वा एकस्याः कारुण्यनिवेदनादभूत् । ऐतिह्यमिदामेवम्—आसीत्कवीनां कल्पद्रुमस्य स्वयं चापि कवयितुर्नवाबखानखाना इति प्रसिद्धिमुपगतस्य सविधे कश्चित् क्षत्रियराजपुत्रः सेवकः । स हि स्वामिनोऽनुमतिमादय निजदेशमुपगतः कृतवान् कयाचिच्चतुरया क्षत्रियकुमार्या परिणयम् । कांश्चिन्मा

सान् तत्सहवासेन सानन्दमतिवाह्य पुनरसौ स्वामिनः सविधमुपगतो निजं नियोगमशून्यं चकार । इतस्तत्प्रणयिनी प्रियवियोगमसहमाना कथं कथमयापयद्विरहविरसान् कतिचिद् दिवसान् । अथ वियोगवह्निना विह्वला सा प्रियतमसविधे पत्रप्रेषणमुचितमभ्यूह्य स्वयमागुम्फितमेकं छन्दः पत्रे विलिख्य प्रेषितवती प्रियतमस्योपकण्ठे । किन्तु दैवसंयोगात्तदिदं पत्रमकस्मान्नवाबखानखानामहोदयस्य दृशोर्गोचरमगच्छत् । आसीत्पत्रे सेयं कविता लिखिता —

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय ।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय ॥

कवितायामस्यां विरहानुप्राणितयाऽन्तर्वेदना निहिता तया प्रभावितः परमसहृदयो नवाबखानखानामहोदयो राजपुत्रगतं सर्वं वृत्तान्तमवगत्य तत्कालमेव तस्मै गृहगमनानुमतिं विततार । नवाबमहोदयस्य हृदये कृतपदमिदं छन्दः कविताक्षरानुसारेण 'बरवा' नाम्ना प्रासिध्यत् । कविताप्रणयी नवाबमहोदयः स्वयमस्मिन् छन्दसि भूयसीः सूक्तीः समुपनिवद्धवान् । समादृतवांश्च तद्दिनादारभ्यैव तदिदं छन्दः कविसमाजः, यस्मिन् हि रचनापाटवं प्रदर्शयन्तो गोस्वामितुलसीदासादयो भूयसीं सफलतामधिजग्मुः ।

ऐतिह्येनानेन बरवैछन्दसो विरहवर्णनानुकूलत्वख्यापिनी या परम्परा हिन्दीकविसमाजे प्राचलत्तस्या मूलं गवेषयितुं सुकरम् । एवं बरवैच्छन्दः खानखानामहोदयस्य, चौपाई तुलसीदासस्य, दोहा विहारिणः, छप्पयच्छन्दोनाभादासस्येत्यादि यथा छन्दोनिबन्धपाटवं हिन्दीकवीनां प्रथितं, तथैव कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता, भवभूतेः शिखरिणी, शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः, जगन्नाथस्य मालभारिणी, गोवर्द्धनस्यार्या इत्यादिदिशा तत्तत्कवीनां विशेषच्छन्दोनिबन्धनपाटवं संस्कृतकविसमाजे प्रसिद्धम् । एवमेव 'हास्यं दोधकम्, करुणं मन्दाक्रान्ता-पुष्पिताग्रादीनि, शृङ्गारं पृथ्वी-स्रग्धरादीनि, वीरं शिखरिणी-शार्दूलविक्रीडितादीनि सौकर्येणाभिव्यञ्जयन्ती' ति काव्यप्रकाशोक्तिरपि छन्दसां रसाभिव्यञ्जकत्वे विशेषं महत्त्वं चोद्बोधयति । अक्षरसङ्घटना यथा रसोद्रेके सहायिका तथैव वृत्तभेदेषु वर्णपरिमाणादीन्यपि विशिष्टरसानुकूलानीति कतिपयेषां व्रजभाषाच्छन्दसामुदाहरणेन स्पष्टीभवेत् । व्रजभाषायाम् 'अमृतध्वनि—'छप्पया'दिच्छन्दसां घटना, योजना च स्वत एव तादृशी यया वीर-रौद्रादिरसानां चित्रणे नितरामानुकूल्यं भवति कवेः । बरवैछन्दसो वेदनानुकूला संक्षिप्ता, मार्मिकी च सङ्घटना करुणरसानुकूलेत्युपर्युक्तवानस्मि ।

संस्कृते मात्रिकच्छन्दांसि

तत्तद्रसभावाद्यभिव्यञ्जनाय तदनुकूलानां वृत्तभेदानामावश्यकता छन्दसा-

माविष्कारस्य जननी समभूदथवा नेति गवेषणाया विषयः । इदमपि सुसम्भवं यच्छन्दोभेदानामाविष्कारानन्तरं तेषां तत्तद्रसानुकूलत्वमनुभूतं स्यात्कविभिः । किन्तु शनैः शनैश्छन्दसां जातयस्तावत्प्रसृता यत्प्रस्तारभेदेन छन्दसामानन्त्यमुद्घोषितं छन्दोविद्भिः । संस्कृते वर्णानां प्रस्तारेणानन्तानां छन्दसामुद्भावनाऽजायत । मात्रिकच्छन्दसामुद्भवस्तु प्राकृतभाषाभ्योऽभूदिति सम्भवः । गाथाभेदेभ्य आर्याच्छन्दस उद्गमोऽभूत् । दण्डकेष्वपि कतिपये मात्राणामाधारेणैव प्राचलन् । अपभ्रंशभाषाभ्यो, व्रजभाषायाश्चोद्भूतान्यनेकानि छन्दांसि शनैः शनैः संस्कृते समायातानि । शङ्कराचार्यस्य 'चर्पटपञ्जरिका'यां 'अङ्गं गलितं पलितं मुंडम्, शनविहीनं जातं तुण्डम्' इत्यादिमात्रिकच्छन्दसामुपयोगोऽस्ति ।

हिन्दी-साहित्यस्य 'रीतिकाले' यदा व्रजभाषाकविता समग्रेऽपि भारते माधुर्यादिगुणैः प्रचारमभजत्, तच्छन्दांसि च घनाक्षरी-चौपाई-दोहा-सोरठादीनि समभूवन् सर्वतः प्रसिद्धानि; कतिपयैः संस्कृतकविभिरपि छन्दःस्वमीषु काव्यलेखनप्रवृत्तिः प्रदर्शिता । मन्ये कविकलानिधिः श्रीकृष्णभट्टो यो हि संस्कृत-प्राकृत-व्रजभाषादिषु मूर्धन्यः कविरासीत्, परम्परायामस्यां प्रामुख्येन भागमगृह्णात् ।

कविकलानिधि-श्रीकृष्णभट्टः[1]

कविकलानिधिः श्रीकृष्णभट्टो गौतमगोत्रीयस्तैलङ्गवंशजो 'देवर्षि' इत्यवटङ्कधरोऽभूत् । एतत्पूर्वजा आन्ध्रप्रदेशाद् वाराणसीं, वाराणसीतः प्रयागं, प्रयागाद् बान्धवनगरं, ततो बूंदीनगरं चाऽऽगच्छन् । बुन्दीपतिना श्रीबुधसिंहेन भूरि सम्मानितः श्रीकृष्णभट्टस्तद्राजसभां बहुकालं यावदलंचकार । ततो विद्वद्गुणग्राहिणा महाराजाधिराजेन श्रीजयसिंहेनाम्बेरमानायितः । बुन्दीपतेराज्ञयाऽनेन व्रजभाषायां 'शृंगाररसमाधुरी'त्याख्यो ग्रन्थो व्यलेखि । आम्बेरनरेशाद् बहुमानं सौहार्दं च लब्धवताऽनेन न केवलं तदाज्ञया बहवो ग्रन्था एव लिखिताः, किन्तु तेनानुष्ठीयमानेऽश्वमेधयागे आर्त्विज्यमप्याचरितम् । अयं हि तत्र ऋत्विक्षट्केऽन्यतमोऽभूद्याजकः । महाराजजयसिंहाज्ञयाऽनेन व्रजभाषायाम् 'अलङ्कारकलानिधिः', संस्कृते 'वृत्तमुक्तावली', संस्कृतगीतेषु 'रामरासः' अथवा 'रामगीतम्', उपनिषदां च प्राचीनहिन्दीभाषायामनुवादा लिखिताः । महाराजजयसिंहस्य स्वर्गाधिरोहणानन्तरं महाराजमीश्वरीसिंहमप्ययं कञ्चित्कालं सेवितवान् । तत्प्रीतये 'ईश्वरविलास महाकाव्यं' नामैतिहासिकं काव्यमयमलेखीत् । सुन्दरीस्तवराज-वेदान्तपञ्चविंशति-प्रभृतयो ग्रन्था अप्यनेन लिखिताः ।

---

[1] श्रीकृष्णभट्टस्य विस्तृतं जीवनचरित्रं जिज्ञासुभिः राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषणमन्दिरात् प्रकाशितस्य 'ईश्वरविलास' महाकाव्यस्य (१९५८) भूमिकायां (पृ. ४१) द्रष्टव्यम् ।

महाराजस्येश्वरीसिंहस्य कारुणिकनिधनानन्तरं माधवसिंहो राज्यासनमारुरोह। तदर्थमनेन 'पद्यमुक्तावली'[1] समुपगुम्फिता। भरतपुराधीशस्य श्रीसूर्यमल्लस्य राजसभायां सम्मानं लब्धवताऽनेन 'दुर्गाभक्तितरङ्गिणी' ग्रन्थोपि तत्प्रेरणया विरचितः। जयपुरधराधीशेन सादरमस्मै प्रदत्ता ग्रामसम्पत्तिरद्युनाऽप्यस्य वंशजैरुपभुज्यते। अयं वेदान्त-मीमांसा-योग - साहित्य - व्याकरणादीनां धुरन्धरो विद्वान्, संस्कृत-प्राकृत-व्रजभाषादीनां समर्थः कविः, सुप्रथितो मन्त्रवेत्ता, महान् याज्ञिको, वेदार्थपारगश्चासीदिति 'कुलप्रबन्ध' कर्त्तुः श्रीहरिहरभट्टस्यानेन पद्येन सुशकं ज्ञातुम्—

मीमांसापरिशीलने पटुमतिः सांख्याब्धिपारङ्गमो
न्यायाऽनर्गलवाक्प्रपञ्चचतुरो वेदान्तसिद्धान्तधीः।
काव्य-व्याकृतिवृत्तकोषकुशलोऽलङ्कारसर्वस्ववित्
श्रीकृष्णः कविपण्डितो विजयते वाणीविलासालयः।[2]

एतद्विरचिता बहवो ग्रन्था मत्सकाशे विद्यन्ते। बहवस्तु पूनास्थ-भाण्डारकर-ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट प्रभृति प्राचीनग्रन्थागारेषु सुरक्षिताः शनैः शनैर्गवेषकाणां परिश्रमेण प्राकट्यमायान्ति।

अद्यावध्युपलब्धा एतल्लिखिता ग्रन्थाः—(संस्कृते) ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, पद्यमुक्तावली, वृत्तमुक्तावली, प्रशस्तिमुक्तावली, त्रिपुरसुन्दरीस्तवराजः, वेदान्तपञ्चविंशतिः, रामगीतम्, इत्यादयः।

(व्रजभाषायाम्)—अलङ्कारकलानिधिः, साँभर-युद्ध, जाजऊजुद्ध, बहादुरविजय, जयसिंहगुणसरिता, शृङ्गाररसमाधुरी, विदग्धमाधवमाधुरी, तैत्तिरीयाद्युपनिषदामनुवादः, रामचन्द्रोदयः, रामरासा, वृत्तचन्द्रिका, नखसिखवर्णन, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, इत्यादयः।

महाराज-सवाईजयसिंहेनास्मै 'कविकलानिधि' इत्युपाधिरपि प्रादीयत।

भाण्डारकरप्राच्य-शोध-संस्थानाध्यक्षेण स्व० श्री परशुरामकृष्ण गोडे महाभागेनैतल्लिखिता बहवो ग्रन्थाः पूनास्थितराजकीयपाण्डुलिपिभाण्डागारादधिगताः। मदुपरि निर्मायं स्नेहभावमारक्षतानेन वृत्तमुक्तावल्याः ईश्वरविलासमहाकाव्यस्य च पाण्डुलिपयो दर्शनार्थमत्र प्रेषिताः। अनेन श्रीकृष्णभट्टस्य परिचायकानि शोधपत्राण्यपि पत्रिकासु प्रकाशितानि। श्रीकृष्णभट्टस्य जन्मकालः संवत्

---

[1] राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषणमन्दिरात्प्रकाशिता।

[2] दृश्यतां 'साहित्यवैभवम्' पृ. ५७६।

१७२५ (१६६६ ई.) प्रयाणकालश्च संवत् १८०० (१७४४ ई.) तोऽनन्तर-मित्यनुमीयते ।

वृत्तमुक्तावली

वैदिकच्छन्दःसु, संस्कृतवृत्तजातिषु व्रजभाषाच्छन्दःसु च समानमधिकारं लब्धवता श्रीकृष्णभट्टेन विलिखितश्छन्दःशास्त्रविवेचनपरोऽयं ग्रन्थः पूनातः समुपलब्धोऽभूत् । ग्रन्थेऽस्मिन् वैदिक-लौकिक-व्रजभाषादिच्छन्दसां सोदाहरणं विवेचनं ग्रन्थकृता विहितं, स्वनिर्मितान्युदाहरणानि च प्रदाय ग्रन्थस्य महत्त्वं समेधितमित्यादिविशेषानालोच्य मयाऽस्य प्रतिलिपिः सामान्यसंशोधनैः सह विहिता, राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषणमन्दिरस्य संस्थापनानन्तरं श्रीकृष्णभट्टविरचितस्य 'ईश्वरविलास' महाकाव्यस्य प्रकाशनमेतस्य सम्मान्य-संचालकेन श्रीजिनविजयमुनिना स्वीकृतमासीत् । अनेनैव प्रसङ्गेन श्रीकृष्णभट्टविरचितां वृत्तमुक्तावलिमिमामहं संचालकमहोदयाय, पुरातत्त्वसंस्थानस्यास्यान्येभ्यो निर्णायकसदस्येभ्यश्चादर्शयम । पुरातत्त्वमार्मिकेन सञ्चालकमहोदयन राजस्थानस्य धुरन्धरविदुषोऽस्याः कृतेः प्रकाशनाय प्रोत्साहितोऽहम् । तस्यैव महाभागस्य पर्यवेक्षणे सेयमद्य पाठकानां पुरस्तादुपतिष्ठत इति परमं प्रमोदमावहन् श्रीमुनिमहोदयमनेकैर्धन्यवादैरभिनन्दामि ।

प्रसङ्गेऽस्मिन् पुनः सकृद् भाण्डारकरप्राच्य-शोधसंस्थानाध्यक्षः श्री पी. के. गोडे महोदयः स्मरणपथमारोहति, येन सर्वतः प्रथमं पुस्तकस्यास्य पाण्डुलिपिरधिगता, परिचायिता च पण्डितमण्डलेषु । अतोव खेदस्यायं विषयो यदस्याः प्रकाशनात्पूर्वमेव श्रीगोडेमहोदयो दिवमारूढः । महाशयस्यास्योपकारभारं शिरसा वहन् जयपुरस्य स्व० श्रीहरिनारायणपुरोहितमहोदयमपि साभारं स्मरामि यत्सौजन्येन 'वृत्तमुक्तावल्याः' पाण्डुलिपिः पूनातः सुलभाऽभवत् । राजस्थानपुरातत्त्वमन्दिरस्योपसञ्चालकाय श्रीगोपालनारायणशर्म एम. ए., महोदयायापि साशीरभिनन्दनानि प्रदेलिमानि येन पाण्डुलिपीनां मुद्रणसमये स्थाने स्थाने संशोधनानि मह्यं बोधितानि, वैदिकछन्दःप्रकरणे छन्दोनाम्नां तुलनात्मकमवेक्षणं विधाय संशोधने च साहाय्यमाचरितम् । आयुष्मान् चि० कलानाथशास्त्रिसाहित्याचार्यः, एम. ए. (आंग्ल-साहित्ये) अपि शुभाशीर्भिरभिनन्दनीयो येन ग्रंथसम्पादने, संशोधने, भूमिकालेखने च मे भूयस्तरां साहाय्यं विहितम् । अनेन हि विलिखितः श्री पी. के. गोडे महोदयस्य गवेषणानां सारसंक्षेपः, पुस्तकस्य परिचयश्चात्रैव प्रकाश्यते पाठकानां प्रमोदाय ।

भृशमवदधतोपि मे संशोधने प्रतिलिपीकरणे च यास्त्रुटयः समभूवन्, विज्ञाः पाठकास्ताः क्षमिष्यन्त इत्याशासे । वैदिकच्छन्दःप्रकरणेऽन्यत्र च यत्र पाण्डुलिपिस्त्रुटिताऽशुद्धा चाऽऽसीत् तत्र यथामति संशोधनाय प्रयतितवानस्मि,

तथापि दुरूहस्थलेष्वनधिकारचर्चामनुचितां मन्वानेन मया त्रुटितानि स्थलान्येकद्वानि यथावदेव त्यक्तानि, अधिकारिभिरेव पूरणीयानि । 'आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञान' मित्युक्तिदिशा ग्रंथस्यास्योपयोगित्वस्य त एव परीक्षका इति तेभ्य एव परिश्रममिमं समर्पयन् विरमामि ।

"इत्येतत् सूत्ररूपेण विनयाद् विन्यवेदयत् ।"

आषाढी पूर्णिमा, सं० २०२०,
मञ्जुनिकुञ्जः, सी. स्कीम, जयपुरम्

भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री,
जयपुरालयः ॥१

"यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति ।"

(छान्दोग्यब्राह्मण ३।७।५)

"सर्व्वैश्छन्दोभिर्यजेदित्याहुः, सर्व्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयंस्तथैवेतद्यजमानः सर्व्वैश्छन्दोभिरिष्ट्वा स्वर्गं लोकं जयति"

(ऐतरेयब्राह्मण २।३)

कविप्रशस्तिः

मीमांसापरिशीलने पटुमतिः सांख्याब्धिपारङ्गमो
न्यायानर्गलवाक्प्रपञ्चचतुरो वेदान्तसिद्धान्तधीः ।
काव्यव्याकृतिवृत्तकोषकुशलोऽलङ्कारसर्वस्ववि-
च्छ्रीकृष्णः कविपण्डितो विजयते वाणीविलासालयः ।।

१ छन्दसामकारादिवर्णानुक्रमसूची

नाम	पृष्ठ
अतिझुल्लन	३५
अतिधृति	७, १७
अत्यष्टि	७, १७
अनुष्टुप्	२, ३, ४, १४
आर्षी अनुष्टुप्	२, १२
दैवी ,,	३, ८
आसुरी ,,	३, ९
प्राजापत्या ,,	३, ९
याजुषी ,,	३, १०
साम्नी ,,	१, २, १०
आर्ची ,,	१, २, ११
ब्राह्मी ,,	२, १२
यजुरन्ता ,,	१४
विराट् ,,	१४
अनुष्टुब् विराट्	१४
अनुहरिगीत	३२
अपरहंसी	६२
अमृतगति	४४
अरिल्ल	२७
अष्टि	७, १७
आकृति	७, १७
आख्यानकी	४७
आभीरक	३०
इन्द्रवज्रा	४६
इन्द्रवंशा	४७
उत्कृति	७, १७
उद्गाथा	२२
उपजाति	४७
उपझुल्लन	३५
उपवारि	६५

नाम	पृष्ठ
उपविशाल	६४
उपेन्द्रवज्रा	४७
उल्लाल	२६
उष्णिक्	२, ३
आर्षी उष्णिक्	२, १२
दैवी ,,	२, ८
आसुरी ,,	३, ९
प्राजापत्या ,,	३, ९
याजुषी ,,	३, १०
साम्नी ,,	१, २, १०
आर्ची ,,	१, २, ११
ब्राह्मी ,,	२, १२
ककुप् ,,	४
पुर ,,	४
अवसानापुर ,,	१३
पर ,,	४
विषमपदा ,,	१३
न्यङ्कुशिरा ,,	४
बर्द्धमाना ,,	१४
उष्णिग्गर्भा ,,	४
चतुष्पदा ,,	४
ककुम्मती	७
कन्द	५०
कमल	३८, ४१
कमला	४२
कमलावली	५०
करहंस	४०
कलावती	५१
काम	३६
काव्य	२५

नाम		पृष्ठ
क्रीडाचक्र		५८
कुण्डलिका		२
कृति		७
खञ्जविशाल		४४
खञ्जा		२८
खञ्जोपविशाल		६४
गगनाङ्ग		२८
गन्धानक		२४
गाथा		२१
गाथिका		२१
गाथिनी		२२
गायत्री		१, ३, ७
आर्षी	गायत्री	२, १२
दैवी	,,	१, ८
आसुरी	,,	१, ३, ८
प्राजापत्या	,,	३, ९
याजुषी	,,	१, ३, १०
साम्नी	,,	१, २, १०
आर्ची	,,	१, २, ११
ब्राह्मी	,,	२, १२
चतुर्विंशत्यक्षरा	,,	१२
एकपदा	,,	१२
स्वराड्	,,	१२
उष्णिग्गर्भा	,,	१३
द्विपदा	,,	१३
अवसाना	,,	१३
त्रिपदा	,,	१३
पादनिचृत्	,,	३, ४, १३
विराट् शंकुमती	,,	१३
विराट् छन्दो	,,	१३
विराट् द्विपदा	,,	१३
अनिरुक्ता	,,	१३
अतिपादनिचृत्	,,	४
नागी	,,	४
वाराही	,,	४

नाम		पृष्ठ
वर्द्धमाना	गायत्री	४
प्रतिष्ठा	,,	४
द्विपदाविराड्	,,	४
त्रिपदाविराड्	,,	४
वक्रपद		५२
चर्चरी		५८
चञ्चला		५५
चतुर्वचन		३६
चतुरंस		३९
चतुष्पदी		२५
चन्द्र		२५
चम्पकमाला		४३
चामर		५३
चुलियाला		२९
जगती		२,३,६,७,१८
आर्षी	जगती	२, १२
दैवी	,,	३, ९
आसुरी	,,	३, ९
प्राजापत्या	,,	३, ९
याजुषी	,,	३, १०
साम्नी	,,	१, २, ११
आर्ची	,,	१, २, ११
ब्राह्मी	,,	२, १२
पुरस्ताज्ज्योतिः	,,	६
मध्येज्योतिः	,,	६
उपरिष्टाज्ज्योतिः	,,	६
ज्योतिष्मती	,,	६
अति	,,	१८
जनहरण		३४
झुल्लन		३४
तरलनयना		४९
तारक		५०
ताल		४६
ताली		३७
तिलक		३९

नाम		पृष्ठ
तीर्णा		३८
तुङ्ग		४१
तोटक		४६
तोमर		४३
त्रिभंगी		३२, ६३
त्रिष्टुप्		२, ३, १६
आर्षी	त्रिष्टुप्	२, १२
दैवी	,,	३, ८
आसुरी	,,	३, ९
प्राजापत्या	,,	३, ९
याजुषी	,,	३, १०
साम्नी	,,	१, २, ११
आर्ची	,,	१, २, ११
ब्राह्मी	,,	२, १२
पुरस्ताज्ज्योतिः	,,	१६
उपष्टिाज्योतिः	,,	१६
विराट्	,,	१६
शुद्ध	,,	१६
सावित्री	,,	१६
यवमध्या	,,	१६
जगती	,,	१६
त्रिष्टुब् जगती		१६
दण्डक		६६
चण्डवृष्टि	दण्डक	६६
अर्ण	,,	६६, ६७
अर्णव	,,	६६, ६७
जीमूत	,,	६६, ६७
लीलाकर	,,	६६, ६७
उद्दाम	,,	६६, ६७
शङ्खार्क	,,	६६, ६७
चन्द्रेश	,,	६६, ६७
भोगीन्द्र	,,	६६, ६७
पीयूष	,,	६६, ६७
वाराहवात	,,	६६, ६७
प्रचितक -	,,	६६, ६७

नाम		पृष्ठ
मेघमाला	दण्डक	६६, ७०
चण्डवेग	,,	६६, ७०
सिंहविक्रान्त	,,	६६, ७०
अनङ्गशेखर	,,	६६, ७०
अशोकमञ्जरी	,,	६६, ७०
कामवाण	,,	६६
भुजङ्गविलास	,,	६६
पन्नगेन्द्र	,,	६६
दम्भोलि	,,	६६
हेलावली	,,	६६
मालती	,,	६६
केलि	,,	६६
कंङ्केलि	,,	६६
लीलाधिलास	,,	६६
महाचण्डवृष्टि	,,	६७
चण्डकील	,,	६६, ६९
उद्दालक	,,	७१
सिंहविक्रीड	,,	७१
मत्तामातङ्गखेलित	,,	७२
कुसुमस्तबक	,,	७२
दाम	,,	७२
वितान	,,	७३
वर्तुल	,,	७३
अचल	,	७३
हेलावती	,,	६६
दण्डकल		३०
दमनक		४०, ४६
द्विपथा		२३
द्विपदी		२८
दीपक		३०
दुर्मिला		३३, ६३
धवल		६०
घत्ता		२५
घत्तानन्द		२५

नाम		पृष्ठ
वारि		३८
धृति		७, १७
नगाणिका		३८
नराच		५४
नरेन्द्र		६१
निचृत्		७
निशिपाल		५३
नील		५४
पङ्क्ति		२,३,६,१५
आर्षी	पङ्क्ति	२, १२
दैवी	,,	३, ८
आसुरी	,,	३, ८
प्राजापत्या	,,	३, ६
याजुषी	,,	३, १०
साम्नी	,,	१, २, ११
आर्ची	,,	१, २, ११
ब्राह्मी	,,	२, १२
सत:	,,	६
प्रस्तार	,,	६
आस्तार	,,	६
विष्टार	,,	६
संस्तार	,,	६
अक्षर	,,	६
अल्पश:	,,	६
पद	,,	६
पथ्या	,,	६
जगती	,,	६
चतुष्पदाविराट्	,,	१६
अवसानामहा	,,	१६
त्र्यवसानामहा	,,	१६
महापङ्क्ति	,,	१६
पङ्क्तिविराट्	,,	१६
पद्मावती		२७
पदहंस		५३
पिपीलिकमध्या		७
परिवृत्तहीर		३३
प्रकृति		७, १७
प्रज्झटिका		२७
प्रभावती		५१
प्रमाणिका		४०
प्लवङ्गम		३१
प्रहर्षिणी		५१
पाईत्ता		४२
पादाकुलक		२७
प्रिया		३७
पृथ्वी		५५
ब्रह्मरूपक		५५
बिम्ब		४२
बृहती		१४
आर्षी	बृहती	२, १२
दैवी	,,	३, ८
आसुरी	,,	३, ६
प्राजापत्या	,,	३, ६
याजुषी	,,	३, १०
साम्नी	,,	१, २, १०
आर्ची	,,	१, २, ११
ब्राह्मी	,,	२, १२
पथ्या	,,	५
पुरस्ताद्	,,	५, १४
उपरिष्टाद्	,,	५, १४
ऊर्ध्व	,,	१४
न्यंकुसारिणी	,,	५
स्कन्धोग्रीवी	,,	५
उरो	,,	५
विष्टार	,,	५
महा	,,	५
न्यङ्कुसारिणी उरो	,,	१४
सतो	,,	१५
वशाष्टकपदा	,,	५

नाम		पृष्ठ
चतुष्पदा	बृहती	१५
पिपीलिकमध्या	,,	१५
स्कन्धोद्गीती	,,	१४
विपरीता	,,	१५
सतो	,,	१५
भ्रमरावली		५२
भुरिक्		७
भुजङ्गप्रयात		४८
मणिबन्ध		४३
मदनदीपन		३४
मधु		३६
मधुभार		३०
मनोहर		४०
मन्थान		३६
मन्दर		३८
मन्द्रगीत		३२
मन्दाक्रान्ता		५७
मल्लिका		४१
महाराष्ट्र		३५
महालक्ष्मी		४२
मही		३७
माणवकक्रीडा		४१
माया		५०
मालिनी		५४
माला		२६, ४६
मालाधर		५६
माली		४३
मुक्तादाम		४६
मुण्डक		६१
मृगेन्द्र		३७
मोदक		४६
यमक		३८
पद्ममया		७
रथोद्धता		४५
रमण		३७

नाम	पृष्ठ
रसिक	२४
रोला	२४
लघुहरिगीत	३२
लघुहीर	३३
लक्ष्मीधर	४८
लीलावती	३१
वसन्ततिलका	५१
वंशस्थ	४७
वारि	६५
विकृति	७, १७
विगाथा	२१
विज्जोहा	३६
विद्याहार	४८
विद्युन्माला	४०
विराट्	७
शक्वरी	७, १७
शङ्खनारी	३६
शङ्कुमती	६
शम्भु	६०
शरभ	५४
शशि	३७
शार्दूलविक्रीडित	५६
शालिनी	४५
शालूर	६३
शिखरिणी	५६
शिखा	२६
शेषराज	३६
श्लोक	४१
श्री	३६
सम्मोहा	३८
संयुत	४३
समानिका	४०
सरोरुह	४५
सवैया	६२
सार	३६

नाम	पृष्ठ
सारङ्गरूप	४६
सारङ्गिका	४६
सारङ्गी	५२
सिंहविलोकित	३१
सिंहिनी	२२
सोराष्ट्र	२६
सुभ्कुल्लन	३५
सुन्दरी	५०, ६२
सुमुखी	४५
सुवास	४०
सुषमा	४४
सुहीर	३३
स्कन्ध	२२
स्रग्धरा	६१
स्वराट्	७
स्वागता	४५
हरिगीत	३१, ६०
हरिणप्लुता	५१
हाकलि	२६
हारीत	३८
हीर	३३

नाम	पृष्ठ
प्रथमो गुम्फ	
मङ्गलाचरणम्--	१
आर्षी गायत्री	१
दैवी ,,	१
आसुरी ,,	१
प्राजापत्या ,,	१
याजुषी ,,	१
साम्नी ,,	१
आर्ची ,,	१
ब्राह्मी ,,	२
आर्षी उष्णिक्	२
आर्ष्योनुष्टुबादयः	२
दैवी गायत्री	२
दैवी उष्णिक्	२
दैवी अनुष्टुप्	३
दैवी बृहती	३
दैवी पङ्क्तिः	३
दैवी त्रिष्टुप्	३
दैवी जगती	३
आसुरी गायत्री	३
आसुरी अनुष्टुप्	३
आसुरी उष्णिगाद्याः	३
प्राजापत्या गायत्र्यादयः	३
जगती	३
विराट्	३
पङ्क्तिः	३
त्रिष्टुप्	३
उष्णिक्	३
अनुष्टुप्	३
गायत्री	३

नाम	पृष्ठ
जगती	३
विराट् त्रिष्टुप्	३
पादनिचृत्	४
नागी	४
विपरीता वाराही	४
वर्द्धमाना	४
विपरीता प्रतिष्ठा	४
द्विपदा विराड् गायत्री	४
त्रिपदा विराड्	४
उष्णिग् गायत्री	४
उष्णिग् जगती	४
ककुबुष्णिक्	४
पुरः उष्णिक्	४
परोष्णिक्	४
न्यङ्कुशिरा उष्णिक्	४
उष्णिग्गर्भोष्णिक्	४
चतुष्पदा उष्णिक्	४
त्रिपदानुष्टुप्	५
महीपदपङ्क्तिः	५
बृहती	५
पथ्या बृहती	५
न्यङ्कुसारिणी	५
स्कन्धोग्रीवी	५
उरो बृहती	५
उपरिष्टाद् बृहती	५
चतुष्पदा बृहती	५
दशाष्टकपदा बृहती	५
महाबृहती	५
सतोबृहती	५
इति बृहत्यधिकारः	६

नाम	पृष्ठ
पङ्क्तिः	६
सतः पङ्क्तिः	६
प्रस्तार ,,	६
आस्तार ,,	६
विष्टार ,,	६
संस्तार ,,	६
अक्षर ,,	६
अल्पशः ,,	६
पद ,,	६
पथ्या ,,	६
जगती	६
त्रिष्टुब् ज्योतिष्मती	६
ज्योतिष्मती जगती	६
पुरस्ताज्ज्योतिः	६
मध्येज्योतिः	६
इति त्रिष्टुप्जगत्योरधिकारः	६
शङ्कुमती	७
ककुद्मती	७
पिपीलिकमया	७
यवमया	७
निचृत्	७
भुरिक्	७
विराड् गायत्री	७
स्वराड् ,,	७
उत्कृतिः	७
अभिकृतिः	७
संकृतिः	७
विकृतिः	७
आकृतिः	७
प्रकृति	७
धृतिः	७
अष्टिः	७
शक्वरी	७
जगती	७
अतिजगती	७
दैवी गायत्री	८

नाम	पृष्ठ
दैवी उष्णिक्	८
दैवी अनुष्टुप्	८
दैवी बृहती	८
दैवी पङ्क्तिः	८
दैवी त्रिष्टुप्	८
दैवी जगती	८
आसुरी गायत्री	८
आसुरी उष्णिक्	९
आसुरी अनुष्टुप्	९
आसुरी बृहती	९
आसुरी पङ्क्तिः	९
आसुरी त्रिष्टुप्	९
आसुरी जगती	९
प्राजापत्या गायत्री	९
प्राजापत्या उष्णिक्	९
प्राजापत्या अनुष्टुप्	९
प्राजापत्या बृहती	९
प्राजापत्या पङ्क्तिः	९
प्राजापत्या त्रिष्टुप्	९
प्राजापत्या जगती	९
याजुषी गायत्री	१०
याजुषी उष्णिक्	१०
याजुषी अनुष्टुप्	१०
याजुषी बृहती	१०
याजुषी पङ्क्तिः	१०
याजुषी त्रिष्टुप्	१०
याजुषी जगती	१०
साम्नी गायत्री	१०
साम्नी उष्णिक्	१०
साम्नी अनुष्टुप्	१०
साम्नी बृहती	१०
साम्नी पङ्क्तिः	११
साम्नी त्रिष्टुप्	११
साम्नी जगती	११
आर्ची गायत्री	११
आर्ची उष्णिक्	११

नाम	पृष्ठ
आर्ची अनुष्टुप्	११
आर्ची बृहती	११
आर्ची पङ्क्तिः	११
आर्ची त्रिष्टुप्	११
आर्ची जगती	११
ब्राह्मी गायत्री	१२
ब्राह्मी उष्णिक्	१२
ब्राह्मी अनुष्टुप्	१२
ब्राह्मी बृहती	१२
ब्राह्मी पङ्क्तिः	१२
ब्राह्मी त्रिष्टुप्	१२
आर्षी अनुष्टुबादयः	१२
चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री	१२
एकपदा गायत्री	१२
स्वराड् गायत्री	१२
उष्णिग्गर्भा गायत्री	१३
द्विपदा ,,	१३
अनवसाना ,,	१३
पादनिचृद् ,,	१३
विराट्शङ्कुमती ,,	१३
विराट् छन्दोः ,,	१३
विराट् द्विपदा ,,	१३
अनिरुक्ता ,,	१३
इति गायत्र्यधिकारः	१३
उष्णिक्	१३
ककुबुष्णिक्	१३
परोष्णिक्	१३
अनवसाना पुर उष्णिक्	१३
पुर उष्णिक्	१३
विषम पदा उष्णिक्	१३
वर्द्धमाना उष्णिक्	१४
इति उष्णिगधिकारः	१४
अनुष्टुप्	१४
विराडनुष्टुप्	१४
यजुरन्तानुष्टुप्	१४
अनुष्टुब् विराट्	१४
इति अनुष्टुबधिकारः	१४
बृहती	१४

नाम	पृष्ठ
पुरस्ताद् बृहती	१४
उपरिष्टाद् ,,	१४
ऊर्ध्व ,,	१४
न्यङ्कुसारिणी उरो बृहती	१४
स्कोन्धोद्गीती ,,	१४
विपरीता ,,	१५
न्यङ्कुसारिणी ,,	१५
सतो बृहती	१५
चतुष्पदा बृहती	१५
पिपीलिकमध्या बृहती	१५
इति बृहत्यधिकारः	१५
बृहती पङ्क्तिः	१५
पङ्क्तिः	१५
प्रस्तार पङ्क्तिः	१५
चतुष्पदा विराट् पङ्क्तिः	१५
विष्टार पङ्क्तिः	१५
स्वराट् पङ्क्तिः	१५
चतुष्पदा विराट् पङ्क्तिः	१६
अनवसाना महापङ्क्तिः	१६
व्यवसाना महापङ्क्तिः	१६
महापङ्क्तिः	१६
पङ्क्तिर्विराट्	१६
इति पङ्क्त्यधिकारः	१६
त्रिष्टुप्	१६
उपरिष्टा ज्योतिस्त्रिष्टुप्	१६
विराट् त्रिष्टुप्	१६
पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्	१६
शुद्ध त्रिष्टुप्	१६
सावित्री त्रिष्टुप्	१६
यवमध्यमा त्रिष्टुप्	१६
त्रिष्टुप् जगती	१६
जगती त्रिष्टुप्	१६
इति त्रिष्टुबजगत्योरधिकारः	१७
उत्कृतिः	१७
अभिकृतिः	१७
संस्कृतिः	१७
विकृतिः	१७
आकृतिः	१७

नाम	पृष्ठ
प्रकृतिः	१७
अशीत्यक्षराकृतिः	१७
अतिधृतिः	१७
धृतिः	१७
अत्यष्टिः	१७
अष्टिः	१७
अतिशक्वरी	१७
शक्वरी	१७
अतिजगती	१८
जगती	१८
अथ द्वितीयो गुम्फः	१८
द्वितीयगुम्फप्रस्तावना	१८
गुरुलघुलक्षणम्	१९
अष्टगणाः	२०
द्विगणविचारः	२१
छन्दोनिरूपणम्	२१
गाथाप्रभेदाः	२१
गाथिकालक्षणम्	२१
सर्वगुरुगाथिका	२१
सर्वलघुगाथिका	२१
गाथालक्षणम्	२१
सर्वगुरुगाथा	२२
सर्वलघुगाथा	२२
विगाथाच्छन्दः	२२
सर्वगुरुविगाथा	२२
सर्वलघुविगाथा	२२
उद्गाथाच्छन्दः	२२
गाथिनी लक्षणम्	२२
सिंहिनी ,,	२३
स्कन्धकच्छन्दोलक्षणम्	२३
इति गाथाप्रकरणम्	२३
द्विपथावृत्तम्	२३
रसिकच्छन्दः	२४
रोलावृत्तम्	२४
गन्धानकच्छन्दः	२४
चतुष्पदी	२५
घत्ता	२५
घत्तानन्दः	२५
अथ षट्पदप्रकरणम्	२५
काव्यं नामच्छन्दः	२५
उल्लाललक्षणम्	२६
प्रज्झटिकाच्छन्दः	२७
अरिल्लम्	२७
पादाकुलकम्	२७
पद्मावतीच्छन्दः	२७
कुण्डलिका	२८
गगनाङ्गम्	२८
द्विपदीच्छन्दः	२८
खञ्जा	२८
शिखा	२९
माला	२९
चुलियाला	२९
सौराष्ट्रम्	२९
हाकलिवृत्तम्	२९
मधुभारवृत्तम्	३०
दीपकच्छन्दः	३०
आभीरकच्छन्दः	३०
दण्डकलच्छन्दः	३०
सिंहविलोकितम्	३१
प्लवङ्गमच्छन्दः	३१
लीलावतीः	३१
हरिगीतच्छन्दः	३१
अनुहरिगीतम्	३२
मन्द्रगीतम्	३२
लघुहरिगीतम्	३२
त्रिभङ्गी	३२
दुर्मिलाच्छन्दः	३३
हीरच्छन्दः	३३
सुहीरम्	३३
लघुहीरकम्	३३
परिवृत्तहीरकम्	३३
जनहरणं नामच्छन्दः	३४

नाम	पृष्ठ
मदनदीपनच्छन्दः	३४
भुल्लनच्छन्दः	३४
उपभुल्लनम्	३५
सुभुल्लनम्	३५
अतिभुल्लनम्	३५
महाराष्ट्रनामच्छन्दः	३५
चतुर्वचनं नामच्छन्दः	३६
अथ तृतीयो गुम्फः	३६
श्री छन्दः	३६
मधुवृत्तम्	३६
कामच्छन्दः	३६
सारच्छन्दः	३६
महीच्छन्दः	३७
ताली ,,	३७
प्रिया ,,	३७
शशिच्छन्दः	३७
रमणच्छन्दः	३७
पञ्चालच्छन्दः	३७
मृगेन्द्रच्छन्दः	३७
मन्दरच्छन्दः	३८
तीर्णा	३८
धारि	३८
नगाणिका	३८
संमोहाच्छन्दः	३८
हारीतवृत्तम्	३८
हंसवृत्तम्	३८
यमकच्छन्दः	३८
शेषराजच्छन्दः	३९
तिलकाख्यच्छन्दः	३९
विज्जोहाच्छन्दः	३९
चतुरंसच्छन्दः	३९
मन्थानच्छन्दः	३९
शङ्खनारीवृत्तम्	३९
मनोहरच्छन्दः	४०
दमनकच्छन्दः	४०
समानिका	४०
सुवासच्छन्दः	४०
करहंसच्छन्दः	४०
मुक्तागुम्फच्छन्दः	४०
विद्युन्माला	४०
प्रमाणिका	४०
माणवकक्रीडा	४१
मल्लिका	४१
तुङ्गच्छन्दः	४१
कमलवृत्तम्	४१
श्लोकलक्षणम्	४१
महालक्ष्मीवृत्तम्	४२
सारङ्गिका	४२
पाईत्ता	४२
कमला	४२
बिम्बवृत्तम्	४२
तोमरच्छन्द	४३
नवाक्षरप्रस्तारः	४३
मालीवृत्तम्	४३
दशाक्षरा	
संयुतनामकम्	४३
चम्पकमाला	४३
मणिबन्धाख्यम्	४३
सारवतीवृत्तम्	४४
सुषमाच्छन्दः	४४
हंसी	४४
अमृतगतिः	४४
अथ एकादशाक्षरा	४५
सरोरुहवृत्तम्	४५
सुमुखी	४५
शालिनी	४५
रथोद्धता	४५
स्वागता	४५
दमनकच्छन्दः	४६
तालच्छन्दः	४६
माला	४६

नाम	पृष्ठ
इन्द्रवज्रा	४६
उपेन्द्रवज्रा	४७
उपजातिः	४७
आख्यानकी	४७
वंशस्थवृत्तम्	४७
इन्द्रवंशा	४७
विद्याहारः	४८
भुजङ्गप्रयातम्	४८
लक्ष्मीधरः	४८
तोटकम्	४६
सारङ्गरूपकछन्दः	४६
मुक्तादाम	४६
मोदकवृत्तम्	४६
तरलनयनाच्छन्दः	४६
सुन्दरीच्छन्दः	५०
मायाच्छन्दः	५०
तारकच्छन्दः	५०
कन्दच्छन्दः	५०
कमलावली	५०
प्रहर्षिणी	५१
हरिणप्लुता	५१
प्रभावतीवृत्तम्	५१
कलावती	५१
वसन्ततिलका	५१
चक्रपदम्	५२
भ्रमरावलिः	५२
सारंगी	५२
चामरम्	५३
निशिपालच्छन्दः	५३
पवहंसकम्	५३
नालिनी	५४
शरभच्छन्दः	५४
नराचच्छन्दः	५४
नीलच्छन्दः	५४
चञ्चला	५५

नाम	पृष्ठ
ब्रह्मरूपकम्	५५
पृथ्वी	५५
मालाधरच्छन्दः	५६
शिखरिणी	५६
मन्दाक्रान्ता	५७
मञ्जीरा	५७
क्रीडाचक्रम्	५८
चर्चरी	५८
शार्दूलविक्रीडितम्	५६
चन्द्रनामक वृत्तम्	५६
धवलच्छन्दः	६०
शम्भुवृत्तम्	६०
हरिगीतम्	६०
मुण्डकच्छन्दः	६१
स्रग्धरा	६१
नरेन्द्रवृत्तम्	६१
अपरहंसीच्छन्दः	६२
सुन्दरीवृत्तम्	६२
सवैया	६२
दुर्मिला	६३
त्रिभङ्गी	६३
शालूरच्छन्द	६३
विशालाख्यः	६४
खञ्जविशालः	६४
उपविशालः	६४
खञ्जोपविशालः	६४
वारि	६५
उपवारि	६५
अथ दण्डकजातय उच्यन्ते	६६
लीलाकरः	६६
उद्दामः	६६
शङ्खार्कः	६६
चन्द्रेशः	६६
भोगीन्द्रः	६६
पीयूषः	६६

नाम	पृष्ठ
वाराहवातः	६६
कामबाणः	६६
भुजङ्गविलासः	६६
दम्भोलिः	६६
हेलावती	६६
मालती	६६
केलिः	६६
कङ्केलिः	६६
लीलाविलासः	६६
चण्डवृष्टिः	६७ (६६)
अर्णः	६७ (६६)
अर्णवः	६७ (६६)
व्यालः	६७ (६६)
जीमूतः	६७ (६६)
महाचण्डवृष्टिः	६७–५८
चण्डकोलः	६९ (६६)
प्रचितकः	६९ (६६)
मेघमालाख्यः	७० (६६)
चण्डवेगः	७० (६६)
सिंहविक्रान्तः	७० (६६)
अनङ्गशेखरः	७० (६६)
अशोकमञ्जरी	७१ (६६)
उद्दालकः	७१ (६६)
सिंहविक्रीड	७१ (६६)
मत्तमातङ्गखेलिताख्यः	७२
कुसुमस्तवकाख्यः	७२
वामाख्यः	७२
वितानाख्याः	७३
वर्तुलाख्यः	७३
अचलः	७३
मकरालयः	७४–७६

शुद्धि-पत्र

*

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
२	८	बाह्यः	ब्राह्मयः
३	१५	जगत्य	जगत्या
३	३२, ३३	पादनिवृत्	पादनिचृत्
४	२, ३	,,	,,
४	४	षटकाश्च	षट्कश्च
५	४	मध्येंऽसे	मध्येऽन्ते
५	२२	स्कन्धोद्गीती	स्कन्धोग्रीवी
१४	३०	,,	,,
५	२३	बृहस्प(त्य)ते	बृहस्पत्यन्ते
५	३२	सनो बृहती	सतोबृहती
७	१७	चतुःशतमुत्कृते	चतुःशतमुत्कृतिः
७	१९	तान्यति संभ्याज्ञाप्तेभ्यः	तान्यभिसंव्याप्रेभ्यः
७	२४	°मतिकृतिः	°मभिकृतिः
७	५	न्यूनाधिकेन	ऊनाधिकेन
७	३	°मध्यत्वात्	°मध्या
७	१२	बृहस्पतिर्वरुण इन्द्रो विश्वेदेवाः	बृहस्पतिर्मित्रावरुणाविन्द्रो विश्वे-देवा देवताः
२६	१३	°द्वयात्कं	°द्वयात्मकं
३५	१	°भुलम्	°भुल्लनम्
३५	११	°भुल्लनपि	°भुल्लनमपि
६८	१६	(शोभेक)	सोद्रेक

॥ श्रीः ॥

तैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभदेवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिगुम्फिता

वृत्तमुक्तावली

(प्रथमगुम्फः)

श्रीहयग्रीवाय नमः । अविघ्नमस्तु ।

बिभ्राणो वेदराशिं करकमलतले वामके सामपूर्वं
स्वाभ्यासात् तत्वमुद्रां द्रुततरकविताबोधिकां दत्तहस्ते ।
सस्मेरस्वैरहासोल्लसदमलकलाशोभिचन्द्राननश्री-
र्देवः श्रीवाजिमूर्द्धा मम हृदयगुहाध्वान्तधारां धुनोतु ॥ १

वैदिकवृत्तसमूहं वितनोमि विनोदहेतवे विदुषाम् ।
भुजगेन्द्रवदनविदितच्छन्दःसूत्रानुसारेण ॥ २

अथ प्रथममेव वैदिकच्छन्दोगणं जिज्ञापयिषुणीय (जिज्ञासमानानाम्) लौकिकमिति सूत्रप्राग्वर्तिद्वितीयतृतीयचतुर्थाध्यायसूत्राणि कथ्यन्ते—

छन्दः । अधिकारोऽयम्, आशास्त्रपरिसमाप्तेः । तेन यदित ऊर्ध्वं वक्ष्याम-स्तच्छन्दस्त्वेन व्यवहार्यमवगन्तव्यम् । वक्ष्यति हि दैव्येकमित्यादि ।

गायत्री, अयमप्यधिकारः, आ द्वादशसूत्रीपरिसमाप्तेः । दैव्येकम् । एकाक्षरं छन्दो दैवीगायत्रीसंज्ञं भवति । अद्यत्वे चरणाधिकाराभावादेकगुरुकमेकलघुकं वा पूर्णं छन्दः । एवमन्यत्रापि । आसुरी पञ्चदश । पञ्चदशाक्षरं छन्द आसुरी गायत्री । प्राजापत्याष्टौ । अष्टाक्षरं छन्दः प्राजापत्या गायत्री । यजुषां षट् । षडक्षरं छन्दो याजुषी गायत्री । साम्नां द्विः । षडित्यनुवृत्या द्विषड् द्वादशाक्षरं साम्नी गायत्री भवति । ऋचां त्रिः । त्रिरावृत्ताः षडष्टादशाक्षरम् आर्ची गायत्री । द्वौ साम्नाम् । द्वादशार्णा साम्नी गायत्री द्वौ द्वावङ्कौ गृहीत्वा वर्द्धेत यावदष्टमकोष्ठम् । तेन चतुर्दशषोडशाष्टादशविंशतिद्वाविंशतिचतुर्विंशत्यङ्काः साम्नीपङ्क्तौ लेख्याः । त्रींस्त्रीनृचाम् । आर्ची गायत्री त्रींस्त्रीनङ्कान् गृहीत्वा वर्द्धेत । तेन तत्पङ्क्तौ एक-

विंशतिचतुर्विंशतिसप्तविंशतित्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत् षट्त्रिंशदङ्का लेख्याः । चतुरश्चतुरः प्राजापत्या । एषा चतुरश्चतुरोऽङ्कान् गृहीत्वा वर्द्धेत । तत्पङ्क्तौ द्वादशषोडशविंशतिचतुर्विंशत्यष्टाविंशतिद्वात्रिंशदङ्का लेख्याः । एकैकं शेषे । यत्र नोक्ता वृद्धिर्दैवीयाजुष्योस्तत्र ते एकमेकं गृहीत्वा वर्द्धयाताम् । तेन तयोः पङ्क्तौ द्व्यादयः सप्तान्तम्, सप्ताद्या द्वादशान्तं लेख्याः । जह्यादासुरी । एषा एकैकं त्यजेत् । तेन तत्र पञ्चदशतो नवान्तं न्यूना लेख्याः । तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुप्जगत्यः । द्वौ द्वौ साम्नामित्यादि वृद्धयोक्तानि उष्णिगादिसंज्ञां लभन्ते । तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य एकैका ब्राह्म्यः । यजुःसामर्चां तिस्रो गायत्र्यो मिलित्वा षट्त्रिंशदक्षरैका ब्राह्मी गायत्री भवति । एकैकेति वीप्सयोष्णिगादेरपि ग्रहणम् । सनाम्न्य एकसंज्ञाः । ता एव तिस्रो मिलित्वा द्विचत्वारिंशदक्षरा ब्राह्मी उष्णिक्, एवं ता एव मिलित्वाऽष्टचत्वारिंशदादिसंख्या अनुष्टुबाद्या बोध्याः । वीप्सयैवैतदर्थलाभात्स्पष्टार्थमिदम् । प्राग्यजुषामार्ष्यः याजुषीप्राग्वर्तिन्यः । प्राजापत्यासुरीदैव्यस्तिस्रो मिलित्वा चतुर्विंशत्यक्षरार्षी गायत्री । एवमार्ष्य उष्णिगाद्या अपि । तत्रेदं रूपदर्शनम्—

छन्दः	गा.	उ.	अ.	बृ.	पं.	त्रि.	ज.
आर्षी	२४	२८	३२	३	४०	४४	४८
दैवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्राजा०	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजु०	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

अत्रार्षी गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरेत्यादि बोध्यम् । 'अग्निं दूतं वृणीमहे । होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।' आर्षी उष्णिग्यथा—'अग्ने वाजस्य गोमतः । ईशानः सहसो यहो अस्मे धेहि जातवेदो महिश्रवः ।' एवमार्ष्योनुष्टुबादयोपि । दैवी गायत्री यथा—'ॐ ।' दैवी उष्णिग्यथा—'भुवः वौषट् ।' दैवी

अनुष्टुब् यथा—'इषे त्वा ।' दैवी बृहती यथा—'भूर्भुवः स्वः ।' दैवी पङ्क्तिर्यथा—'भूर्भुवः स्वरोम्, ये यजामहे ।' एवं त्रिष्टुब्जगत्यौ । आसुरी गायत्री यथा—'धिषणासि पार्वती प्रति त्वा दिह्या [त्या] स्त्वग्वेत्तु ।' आसुर्यनुष्टुब् यथा—'देवानां प्रतिष्ठे स्थः । सर्वतो मा यातम् ।' एवमुष्णिगाद्याः । प्राजापत्या गायत्री यथा—'अमृतापिधानमसि ।' याजुषी गायत्री यथा—'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ।' एवमन्याः । प्रायश एता उदाहरिष्यमाणेषु परीक्षितव्याः ।

इति वैदिके द्वितीयाध्यायसूत्राणि ॥

अथातो विशेषसंज्ञाश्चरणनिर्णयश्च प्रदर्श्यते—पादः । अधिकारोयमापादसमाप्तेः । यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामस्तत्र पाद इत्युपतिष्ठते । वक्ष्यति हि 'गायत्र्या वसव' इत्यादि । इयादिपूरणः । इयादिपूरणो यस्य सः । आदिशब्दादुवोऽपि, तेन नियमितश्चरणो यत्र पूर्यते तत्रेयोवाभ्यां पूरणीयः । यथा—'त्र्यम्बकम् त्रियम्बकम् ।' 'स्वःपवते' 'सुवःपवते' इत्यादि । एवमन्यत्राप्यच्सन्धेः प्रकृत्यादिना पूर्तिरपि । प्रकृत्यान्तः पादमन्ये परे इत्यादिसूत्रानुगुण्यसिद्धयानुसंधेयम् । लिङ्गादिव्यत्ययवत् । गायत्र्या वसवः । गायत्र्याश्चरणो यत्राधिधास्यते तत्राष्टाक्षरो ग्राह्यः । यथा 'अग्निमीळे' इत्यादि । जगत्य आदित्याः । जागतश्चरणो द्वादशाक्षरो ग्राह्यः, यथा—'येन सूर्यज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षिभानुना । तेनास्मद्विश्वा मनिरामनाहुतिमपामीवामपदुःस्वप्न्य ँ सुव ।' विराजो दिशः । वैराजः पादो दशाक्षरो ग्राह्यः । 'अस्ये देव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः । गा नव्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने स चेताः ।' एतां पङ्क्तिमाहुरन्ये । त्रिष्टुभो रुद्राः । त्रैष्टुभ एकादशाक्षरो ग्राह्यः, यथा—'हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः । हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ।' अत्राध्याये एताश्चतस्रः परिभाषाः । अत्र वैपरीत्येन त्रिष्टुब्जगत्योर्लक्षणादष्टाविंशत्यक्षराया उष्णिहः सप्ताक्षरः, द्वात्रिंशदक्षराया अनुष्टुभोऽष्टाक्षरः, षट्त्रिंशदक्षराया उष्णिहः सप्ताक्षरः, द्वात्रिंशदक्षराया अनुष्टुभोऽष्टाक्षरः, षट्त्रिंशदक्षराया बृहत्याः नवाक्षरश्चरणो ग्राह्य इत्येके । एकद्वित्रिचतुष्पादुक्तपादम् । उक्तः परिभाषितः पादोऽस्य तद्गायत्र्यादि तादृशैरेव चरणैः क्वचिदेकपात् क्वचिद् द्विपात् क्वचित्त्रिपात् क्वचिच्चतुष्पाच्च भवति । यथाष्टाक्षरचरणा गायत्री त्रिपदैव, तादृश्यनुष्टुप् चतुष्पदैव । द्वादशै(दश)कादशाक्षरपादा जगती, विराट्त्रिष्टुभश्चतुश्चरणा एवेति । आद्यं चतुष्पादृतुभिः । आद्यं गायत्रं षडक्षरचरणैश्चतुष्पाद् भवति । यथा—'इन्द्रः शचीपतिर्बलेन वीलितः । दुश्च्यवनो वृषा समत्सुसाहसिः । क्वचित्त्रिपाहृषिभिः । क्वचित्सप्ताक्षरैस्त्रिपाद् गायत्रम्, यथा—'य एकश्चर्षणीनां वसूनां मिरज्यति इन्द्रः पञ्च क्षितिनाम् ।' सा पादनिवृत् । सेयं सप्तकचरणा पादनिवृदिति संज्ञान्तरं लभते । एवंविधाश्च विज्ञाता विशेषसंज्ञाः श्रेयोविशेषं

जनयन्ति शब्दशास्त्रे वैकल्पिकरूपज्ञानवदधिकशास्त्रज्ञाने धर्माधिक्यफलत्वात् । केचित्तु । सप्तकयोर्मध्ये षट्कश्चेत्पादनिवृदिति सूत्रयन्ति । यथा—'पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि वाजेभिर्वाजयतां' षट्सप्तकयोर्मध्येऽष्टावतिपादनिवृत् । यथा 'प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् अग्निं रथं न वेद्यम् ।' द्वौ नवकौ षट्काश्च सा नागी । नवकयोरन्ते षट्के नागी यथा—'अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशं ऋध्यामातऽओहैः ।' विपरीता वाराही । आद्ये षट्के वाराही गायत्री बोध्या । द्वौ षट्कौ सप्तकश्चरुसीयसी यथा । 'इन्द्रः सहस्रदाव्नाम् । वरुणः शं॑ स्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः, षट्सप्ताष्टकैर्वर्द्धमाना । यथा—'एषो उषा ऽपूर्व्या । व्युच्छति प्रियादिवः स्तुषेवामश्विना बृहत् ।' विपरीता प्रतिष्ठा । अष्ट सप्तषट्कचरणा यथा—'आपः पृणीत भेषजम् वरूथं तन्वे मम ज्योक्च सूर्यं दृशे ।' क्वचित्तु सप्तषडष्टकचरणा गायत्री दृश्यते । यथा—'पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचासुते ।' तृतीयं द्विपाज्जागतगायत्राभ्याम् । तृतीय-शब्दो 'गायत्र्या वसव' इत्यतो 'विराजो दिश' इति तृतीयसूत्रस्थं विराजमाह, तेन जागतगायत्राभ्यां द्विपदा विराड्गायत्री भवति । यथा—'शुक्रः शुशुक्वां उषो न जारः पप्रा समीचो दिवो न ज्योतिः ।' त्रिपात् त्रैष्टुभैः । त्रिभिस्त्रैष्टुभैस्त्रिपदा विराड् यथा—'दुहीयन्मित्र धितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै । इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ।' इति गायत्र्यधिकारः ।

उष्णिग्गायत्रौ जागतश्च । स्पष्टम्, यथा—'शमग्निरग्निभिः करच्छन्नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वा त्वरया अपस्त्रिधः ।' ककुम्मध्ये चेदन्त्यः । अन्त्यो जागतो गायत्र-योर्मध्ये चेत्ककुबुष्णिग् भवति । यथा—'सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः समर्त्यः । यं त्रायध्वे स्यामते ।' पुर उष्णिक् पुरतः । आद्ये जागते सति, यथा—'तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ।' परोष्णिक् परतः । अन्त्ये जागते सति । पूर्वसूत्रेण गतार्थमपि विशेषसंज्ञार्थमिति हलायुध-भट्टाः, अन्यैस्तु न पठ्यते । त्रैष्टुभजागतचतुष्कैर्न्यङ्कुशिराः विषमौ त्रैष्टुभौ समौ जागतौ चेच्चतुष्पदा न्यङ्कुशिरा उष्णिग्, यथा—'परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासोजनिमा विवस्वतः । ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधिब्रुवन्तु नः ।' आद्यः पञ्चकस्त्रयो गायत्रा उष्णिग्गर्भाः । चतुष्कैरित्यनुवर्तते । आद्ये पञ्चके उष्णिग्गर्भोष्णिग् यथा—'पितुं नुस्तोषं महोधर्माणं तविषीं । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् । चतुष्पाद्दषिभिः । सप्तकचरणा चतुष्पदोष्णिग् यथा—'सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ।' इत्युष्णिगधिकारः ।

अनुष्टुब् गायत्रैः । चतुष्कैरित्यनुवृत्तेश्चतुर्भिर्गायत्रैरनुष्टुब् । यथा—'गायन्ति

त्वा गायत्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतऽ उद्वंशमिवयेमिरे । त्रिपात् क्वचिज्जागताभ्याम् । आद्ये गायत्रे सति । जागताभ्यां त्रिपदानुष्टुब् यथा—'सुश्रवः सुश्रवा असि यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा असि एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ।' मध्येंऽसे च । जागतयोर्मध्ये अंसे वा गायत्रे त्रिपदानुष्टुब् यथा—तत्र मध्यगायत्रा यथा—'पर्यषु प्रधन्ववाजं सातये परिवृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या क्षणयाम ईयसे ।' अन्त्यगायत्रा यथा—'मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणेनो मा कुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवोगुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ।' वैराजैर्वा । दशाक्षरैरपि त्रिपदा यथा—'पिबा सोममिन्द्रमंदतु त्वा यंते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ।' काविराड् नवद्वादशभिः । यथा—'ता विद्वांसा हवामहे वाम् । ता नो विद्वांसा मन्मवोचेतमद्य । प्रार्चत्दयमानो युवाकुः । नष्टरूपी नवट्प्रात्रयोदशैः । यथा—'विप्रच्छामिपावयान् न देवान् वषट् कृतस्याद्भुतस्य दस्राः पातं च सह्यसो युवं चरभ्यसोनः ।' तनु शिरा एकादशैकादशषड्भिः । यथा—'प्रया घोषे मृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रेषयुर्न विद्वान् ।' पञ्चपञ्चका षट्कान्त्या महीपदपङ्क्तिः । यथा—'नीललोहितं भवति कृत्या सक्तिर्व्यज्यते ।' इत्यनुष्टुबधिकारः ।

बृहती जागतस्त्रयश्च गायत्राः । आद्ये जागते त्रिषु गायत्रेषु बृहती यथा—'इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे । जेतारमपराजितम् । स नः पर्षदतिद्विषः । स नः पर्षदतिस्तिधः ।' पथ्या पूर्वस्थे तृतीयः । पूर्वजागते तृतीये सति पथ्या बृहती यथा—'उभयं श्रृणुवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवा सोमपीतये । धिया सविष्ठ आगमत् ।' न्यङ्कुसारिणी द्वितीयः । जागते द्वितीये सति यथा—'अतिविश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामतिद्विषः । शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।' स्कन्धोद्गीती क्रौष्टुकेः, उरो बृहती यास्कस्य । क्रौष्टुकियास्काचार्ययोर्मते न्यङ्कुसारिण्या एते संज्ञे स्तः । उपरिष्टाद्बृहस्प(त्प)ते । अंह्ये जागते उपरिष्टाद्बृहती यथा—'तद्धि वयं वृणीमहे वरुणमित्रार्यमन् येनानिरंहसो यूयम् । पाथने था च मर्त्य मतिद्विषः । पुरस्ताद्बृहती पुरः ।' आद्ये जागते सति गतार्थमपि विशेषसंज्ञार्थम् । विष्टारबृहत्यष्टदशदशाष्टभिः । यथा 'युवं ह्यास्तं महोरन् युवं वायं निरततं सन्तम् । ता नो वभ्रू सुगोपा स्यातम् । पातं नो वृकादघायोः । क्वचिन्नवकाच्चत्वारः । यथा—'अनाधृष्यमनाधृष्यं, देवानामोजोऽभिशस्तयाः । अनभिशस्त्यञ्जसामुपगेषां स्वितेमघाः ।' वैराजौ गायत्रौ च । दशाष्टकपदा बृहती यथा—'उषो वाजंहि वं(स्वय)श्चित्रो मानुषे जने । तेनावह सुकृतो अध्वरामुपये त्वा गृणन्ति वह्नयः' । त्रिभिर्जागतैर्महाबृहती यथा—'अजीजनोऽअमृतमर्त्येष्वांऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः । सदा सरोवाजमच्छासनिष्यदत् । सनो बृहती ताण्डिनः ।'

ताण्डिन आचार्यस्य मते । इति बृहत्यधिकारः ।

पङ्क्तिर्जागतौ गायत्रौ च, यथा—'भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती । गृणाना जमदग्निवत्, स्तुवाना च वशिष्ठवत् ।' पूर्वौ चेद-युजौ सतः पङ्क्तिः, यथा—जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते, स त्वन्नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्यत । विपरीतौ च । समासवै-षम्ये सतः पङ्क्तिः । यथा—'स ऋधः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः । तं विश्वे मानुषा युगाः इन्द्रं हवन्ते तविषं यतः स्रुचः ।' प्रस्तारपङ्क्तिः पुरतः । पूर्वेण गतार्थमिदम् आस्तारपङ्क्तिः परतः । परौ जागतौ चेद्यथा—'अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । यज्ञाय स्तीर्णहविषे विषोमहे । क्षीरं पावक-शोचिषं विवक्षसे ।' विष्टारपङ्क्तिरन्तः । जागतौ मध्ये चेद्विष्टारपङ्क्तिरूह्या । संस्तारपङ्क्तिर्बहिः मध्ये गायत्रौ चेद्यथा 'पितुभृतो नतंतुमित्सु दानवः । प्रतिदध्नो यजामसि, उषा अपस्वसुस्तमः । संवर्तयति वर्तनिं सुजातता ।' अक्षरपङ्क्तिः पञ्चकाश्चत्वारः । यथा 'पश्वानतायुं गुहा च तंतम् । नमो युजानं नमो वहन्तम् । द्वावप्यल्पशः । पञ्चकौ चेद् द्विपदाऽल्पशः पङ्क्तिरूह्या । केचित्तु पञ्चकौ मिलित्वा दशकचतुष्पदा सेत्याहुः । यथा—'मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानाम् । मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् । मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्रकेतुम्, मन्ये त्वा वृषभं चर्षणी-नाम् ।' सा चाल्पशः । एतौ भेदौ क्वचिदेवेत्यर्थः । पदपङ्क्तिः पञ्च । पञ्चक-पञ्चभिः पदपङ्क्तिरूह्या । चतुष्कषट्कौ त्रयश्च । चतुष्कषट्कौ द्वौ पूर्वौ तत-स्त्रिषु पञ्चाक्षरेषु वा पदपङ्क्तिरूह्या पथ्या पञ्चभिर्गायत्रैः । पथ्या पङ्क्तिर्यथा—'इन्द्राणीमासु नारिषु, सुभगामहमश्रवम् । न ह्यस्या अपरं च न, जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।' इति पङ्क्त्यधिकारः ।

जगती षड्भिः । गायत्रैरित्यनुवर्तते । यथा—'तद्विष्णोः परमं पदम् । सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिधते विष्णोर्यत्परमं पदम् ।' एकेन त्रिष्टुब् ज्योतिष्मती । यथा—'इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयायधासिं । बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः । समुस्त्रियाभिर्वाविशंत नरः ।' केचित्तु त्रिष्टुभः प्रत्यासत्तेरेकेन त्रैष्टुभेन त्रिभिर्गायत्रैः सेति वदन्ति । तथा जागती । एकेन जागतेन त्रिभिर्गायत्रैर्ज्योतिष्मती जगती । केचित्तु एकेन जागतेन चतुर्भिर्गायत्रैः पञ्चपदा सेति वदन्ति । पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमेन । आद्येन त्रैष्टुभेन जागतेन वान्यैर्गायत्रैः । पूर्वसंज्ञाभ्यां सिद्धौ विशेषसंज्ञार्थम् । मध्ये ज्योतिर्मध्येन मध्येन त्रैष्टुभेन जागतेन वा उभयतो गायत्राभ्यां मध्ये ज्योति-रित्युभे ऊह्ये । इति त्रिष्टुप्जगत्योरधिकारः ।

अथान्यविशेषसंज्ञाः । एकस्मिन् पञ्चके छन्दः शङ्कुमती । यदेकः पञ्च-

कोऽन्ये षट्कास्तदा शङ्कुमती गायत्री बोध्या । छन्द इति प्रकृतेपि पुनर्ग्रहणात्तादृगुष्णिगादिरपि शङ्कुमती । षट्के ककुद्मती । एकस्मिन् षट्केऽन्येषु यथा लक्षणेषु गायत्र्यादिः ककुद्मती भवति । 'त्रिपादणिष्ठमध्यत्वात्पिपीलिकमध्या । त्रिपादित्यविवक्षितम् । मध्ये अन्त्याक्षरेषु अन्येषु च बह्वक्षरेषु अणुमध्यत्वात्पिपीलिकमध्या गायत्र्यादिः । विपरीता यवमध्या । मध्येऽल्पके । न्यूनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ । चतुर्विंशत्याद्यक्षरा गायत्र्यादिरेकाक्षरेण न्यूनत्वाधिक्याभ्यां निचृद्भुरिजसंज्ञे लभते । द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ । द्व्यक्षरन्यूनाधिकयोरेते संज्ञे । आदितः सं(ज्ञ)दिग्धे । यदा षड्विंशत्यक्षरं छन्दस्तदा किं गायत्री उताहो उष्णिग्विराडित्येवमादौ संदिहानेनादिचरणान्निर्णयोऽवसेयः । आद्ये गायत्रे गायत्री, आद्ये औष्णिहे उष्णिक् इति । देवतादितश्च । इदमपरं निर्णायकम् । आग्नेयी चेद्गायत्री सावित्री चेदुष्णिगिति । आदिशब्दात्स्वरादिः । तथाह । 'अग्निः सविता सोमो बृहस्पतिर्वरुण इन्द्रो विश्वे देवाः ।' गायत्र्यादीनां जगत्यन्तानां क्रमादेता देवताः स्वराः षड्जादयः । षड्जादिनिषादान्ताः सप्त स्वरा गायत्र्यादेः । सितहरितपिशङ्गकृष्णनीललोहितगौरा वर्णाः, आग्निवेश्यकाश्यपगौतमाङ्गिरसभार्गवकौशिकवाशिष्ठानि गोत्राणि । सर्वेषामुदाहरणानि वेदे, देवतादेश्च निर्णयः सर्वानुक्रमण्यादौ परीक्षितव्यानि । इति गायत्र्यादिप्रकरणे तृतीयाध्यायसूत्राणि ।

चतुःशतमुत्कृतेः । यत्र चतुरधिकं शतमक्षराणि सोत्कृतिः । चतुरश्चतुरस्त्यजेदुत्कृतेः । चतुरधिकशताङ्कादारभ्य चतुर्भिश्चतुर्भिरूना अङ्काः स्थाप्या अष्टचत्वारिंशदन्तम् । तान्यतिसंम्या(ज्ञा)प्तेभ्यः कृतिः । तान्युत्कृतेरनन्तराणि पञ्चभ्य उपसर्गेभ्यः पराणि कृतसंज्ञानि स्युः । यथा शताक्षरमतिकृतिः । षण्णवतिकं संकृतिः । द्वानवतिकं विकृतिः । अष्टाशीतिकमाकृतिः । प्रकृत्या च अनुपसु(सृ)ष्टा कृतिरशीतिकं भवति । धृत्यष्टिशक्वरीजगत्यः । कृतेः परेष्वङ्केष्वेताश्चतस्रः संज्ञाः पृथक् पृथक् पूर्वत एतान्येषाम् । एषां धृत्यादीनां पूर्वत्यक्ताङ्केषु धृत्यष्ट्याद्या एव संज्ञाः स्थाप्याः । द्वितीयं द्वितीयमतितः । प्रथमोक्ता धृत्यादिर्द्वितीयं द्वितीयं नाम प्रथमं यच्छब्दरूपं तदतिशब्दात्प्रयोज्यम् । यथा षट्सप्ततिकमतिधृतिः, द्विसप्ततिकं धृतिः । अष्टषष्टिकमत्यष्टिः, चतुः षष्टिकमष्टिरिति । एवमतिशक्वरीशक्वर्यतिजगतीजगत्यश्च । यथा—उत्कृतिः । अतिकृतिः । संकृतिः । विकृतिः । आकृतिः । प्रकृतिः । कृतिः । अतिधृतिः । धृतिः । अत्यष्टिः । अष्टिः । अतिशक्वरी शक्वरी । अतिजगती । जगती । ॥१०४।१००।९६।९२।८८।८४।८०।७६।७२।६८।६४।६०।५६।५२।४८॥ तत्र दिङ्मात्रमुदाहरणं जगत्युक्तैव । अतिजगती यथा—'गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमिश्रोताहवमरक्ष एव या मरुत् । ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यातदुद्धर्तवोनिदः ।' शक्वरी यथा—'न तद्रक्षांसि न पिशाचाश्चरन्ति

देवानामोजः प्रथमं जह्येनु तत् यो बिभर्ति दाक्षायणा हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः । स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः । एवमतिशक्वर्यष्टी अपि । अत्यष्टिर्यथा-विश्वे विहाया अरणि वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रयच्छ्रवस्य यावशिश्रयत् विश्वस्मा इति युध्यते देवत्रा हव्यमूहिषे विश्वस्मा इच्छु कृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा वृण्वति ।' एवं धृत्यतिधृत्यादयोऽपि सर्वानुक्रमण्यादौ विशिष्य परीक्ष्याः ।

इति वृत्तमुक्तावल्यां प्रथमो गुम्फः

दैवी गा 'ॐ', दैवी उ 'भुवः । वौषट् ।' दैवी अनुष्टुप् 'इषे त्वा । ऊर्जेत्वा ।' दैवी बृहती यथा—भर्भुवःस्वः । दैवीपङ्क्तिर्यथा—'भूर्भुवः स्वरोम् । ये यजामहे ।' दैवी त्रिष्टुप् यथा—'विष्णो हव्य ँ रक्ष । अपानं मे पाहि ।' दैवी जगती यथा—'वसोः पवित्रमसि ।' एवं चतुर्दशाध्याये तृतीयाविति मन्त्रेषु आत्मनः पूर्वभागे प्राणभृत्संज्ञकानां दशेष्टकानामुपधाने आयुर्मे इत्यादीनि दश यजूंषि ।

छन्दः	गा	उ	अ	बृ	पं.	त्रि	ज
दैवी	१	२	३	४	५	६	७

प्रथमं दैवी पङ्क्तिः । द्वि. दै. पं. तृ. दै, पं. दं. पं. नवमं दै त्रि । अन्यत्सर्वं दैवी पं. तदग्रे तत्रैव 'माच्छन्द' इति षट्त्रिंशद्यजूंषि । तेषु 'अग्निर्देवते' ति द्वादश यजूंषि । तेषामवयवेषु पक्षपुच्छात्मसन्धिषु द्वादश छन्दस्य संज्ञका निमिष्टकानामुपधाने विनियोगः । तेषु प्रथमं दैव्यनुष्टुप् द्वि. दै. बृ., तृ. दै. पं, च. दै. त्रि., पं. दै. बृ., ष. दै., स. दै. बृ. अ. दै. पं., न. दै. बृ., द. दै. पं., ए. दै. बृ., द्वा. दै. पं., त्र. दै. पं., च. दै. त्रि., पं. दैव्यनु., षो. दै. बृ., स. दै. त्रि., अष्टा. दैव्यनु., ए. दै. बृ., विं. दै. बृ., ए. वि. दै. पं., द्वा. दैव्यनु. । ऽजा. त्रयोविंशतिमं छन्दः दैवी बृहती अश्वश्छन्दः चतुर्विंशं दैवी बृहती छन्दः । अग्निर्देवता । दैवी पङ्क्ति-५, वातो देवता दै. पं. ५, सूर्यो देवता दैवी पं. ५, चन्द्रमा देवता दै. त्रि. ६, वसवो देवता दै. त्रि. ६, रुद्रा दै. पं. ५, आ. दै. त्रि. ६, मरुतो दै. त्रि. ६. विश्वे देवा दै. दै. ज, बृहस्पतिर्दे. दै. ज. ७., इन्द्रो दे. दै. पं. ५, वरुणो दे. दै. त्रि. ६, एवं दैव्या पङ्क्तिर्भूरिशो वेदे विस्तृता तत्रैव स्वयमूह्या । कात्यायनकृतसर्वानुक्रमणिकायां प्रपञ्चितावगन्तव्या ।

अतः परमासुरी पङ्क्तिः प्रपञ्च्य सोदाहरणा प्रदर्श्यते । आसुरी गायत्री यथा—अ. १।१२ कण्डिकायाम् 'धिषणासि पार्वती प्रति त्वा दिव्या (त्या) स्त्वग्वेत्तु' १५ यथा वा—अ. १८।४७ कं. । तस्यापो अक्षर स ऊर्ज्जो नाम सन इदम् ।' १५ ।

गा.	उ.	अ.	बृ.	पं.	त्रि.	ज.
१५	१४	१३	१२	११	१०	९

'ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा'। यथा वा 'पितृभ्य ऊर्ध्वं-बर्हिभ्यो धर्मपावभ्यः स्वाहा' ॥ १५

आसुरी उष्णिग्यथा। 'उपयाम गृहीतोसि वैश्वानराय त्वा' ॥ १४ यथा वा—'दिविधा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिविधाः' ॥ १४ 'बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्या व ते स्वाहा। यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा'। १४ 'इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्र-वते स्वाहा' ॥ १४ यथा वा—'तंतुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जित्व' ॥ १४ 'देवः श्रू त्वं देव धर्मदेवो देवान् पाहि' ॥ १४ आसुर्यनुष्टुप् यथा—'वसवस्त्वां जंतु गायत्रेण छन्दसा' ॥ १३ आदित्यास्त्वां जंतु जागतेन छन्दसा। १३ देवानां प्रतिष्ठे स्थः सर्वतो मा पातम्॥ चतुश्चत्वारिंशः स्तोमो वर्चो द्रविणम्॥ १३ स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये॥' १३ आसुरी बृहती यथा—'अत्र प्रावीरनुवां देववीतये' ॥ १२ आसुरी पङ्क्तिर्यथा—'एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा॥ ११ मधुमाध्वीभ्यां मधुमधुन्वीभ्याम्' ॥ ११ आसुरी त्रिष्टुब् यथा—'आश्विनः पय-स्वा नीयमाने' ॥ १० यथा वा—'षोडशी स्तोम ऊर्जो द्रविणम्' ॥ १० यथा वा 'हविः कृदेहि हविः कृदेहि' ॥ १० आसुरी जगती यथा—'वैष्णवमसि विष्णवे त्वा' ॥ ९ यथा वा—'यजमानस्य पशून् पाहि' ॥ ९ अतः पर प्राजापत्या पङ्क्तिः प्रदर्श्यते—गा. उ. अ. बृ. पं. त्रि. ज.

८ १२ १६ २० २४ २८ ३२

प्राजापत्या गायत्री यथा—'अमृतापिधानमसि' ॥ ८ यथा वा—'उर्वन्तरिक्षमन्वे-मि' ॥ ८ यथा वा—'सम्राडसि प्रतीची दिक्॥ ८ कव्यवाहनाय स्वाहा' ॥ ८ यथा वा—'स्वाहा संज्योतिषा ज्योतिः' ॥ ८ प्राजापत्या उष्णिग्यथा—'स्वाहाग्नये यज्ञियाय संयुजुर्भ्यः' ॥ १२ प्राजापत्या अनुष्टुब् यथा—'तस्यौषधयोप्सरसो मुदो नाम सन इदम्' ॥ १६ यथा वा—'तेजोसि शुक्रममृतममृतमायुष्या आयुर्मे पाहि' ॥ १६ प्राजापत्या बृहती यथा—'अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देव-यजने पृथिव्याः' ॥ २० यथा वा—'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्' ॥ २० यथा वा—'सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्मन्त्रेणाग्नेः साम्राज्ये-नाभिषिञ्चामि' ॥ २० यथा वा—'एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे' ॥ २० प्राजापत्या पङ्क्तिर्यथा—'वसूनां भागोसि रुद्राणामाधि-पत्यं चातुष्पात् स्मृतं चतुर्विंशः स्तोमः॥ २४ आदित्यानां भागोसि मरुतानामा-धिपत्यं गर्भाः स्मृताः पञ्चविंशः स्तोमः' ॥ २५ यथा वा—'तिसृभिरस्तुवत ब्रह्म असृज्यंत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्' ॥ २४ प्राजापत्या त्रिष्टुब् यथा—'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्च इमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो मे कुरयो नाम' ॥ २८ प्राजा-पत्या जगती यथा चतुर्थस्यैकादशकण्डिकायां—'देवीं धियं मनामहे सुमृडीकाम-

भिष्टये । वर्चोधा ँ यज्ञवाहस ँ सुतीर्था नो असद्वशे' ।। ३२ यथा वा तत्रैव द्वितीयकण्डिकायाम् 'आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनंतु । विश्व ँ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः' ।। ३२ यथा वा प्रथमाध्याये चतुर्विंशतितम-कण्डिकायाम् 'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः वायुरसि तिग्म-तेजा द्विषतो वधः' ।। ३२

अथ याजुषी पङ्क्तिः— गा. उ. अ. बृ. पं. त्रि. ज.

गा.	उ.	अ.	बृ.	पं.	त्रि.	ज.
६	७	८	९	१०	११	१२

याजुषी गायत्री यथा—द्वितीयाध्यायस्य पञ्चविंशतितमकण्डिकायाम् 'अस्यै प्रतिष्ठायाः' ।। ६ यथा वा—द्वि. ६ कं. । 'पाहि मां यज्ञन्यम्' ६ । यथा वा—अ. १९ । १ कं. 'अश्विभ्यां पच्यस्व' ।। ६ यथा वा—'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' । ६ याजुष्युष्णिग् यथा—'सरस्वत्यै पच्यस्व' ।। ७ यथा वा—अ. ३।३७ कं.। 'नर्य प्रजां मे पाहि' ।। ७ याजुष्यनुष्टुब् यथा—अ. १९ नवम कं. 'ओजोस्योजो मयि धेहि' ।। ८ एकोनविंशे षट्त्रिंशत्तम कं. 'अमीमदंत पितरोऽर्त्तातृपंत-पितरः' ।। ८ याजुषी बृ. द्वि. द्वात्रिंशत्तम कं. षडव्यजूंषि । 'नमो वः पितरो रसाय' इत्यादीनि । तेषु सर्वेष्वपि याजुषी बृहती बोध्या । याजुषी पङ्क्तिर्यथा—'एकोनविंशे नवमकं. 'मन्युरसि मन्युं मयि धेहि' ।। १० याजुषी त्रिष्टुप् यथा द्वि. विंशतितम कं. 'अग्नये संवेशपतये स्वाहा' ।। ११ 'सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा' ।। ११ यथा वा—अ. १९ । एकादश कं. 'संपृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त' ।। ११ याजुषी जगती यथा—अ. ३ । १८ कं. 'चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय' ।। १२ यथा वा—अ. ४ । १० कं. 'विष्णोः शर्मासि शर्म यज-मानस्य' ।। १२ समाप्ता याजुषी पङ्क्तिः ।

अथ साम्नी पङ्क्तिः प्रपञ्च्यते—गा. उ. अ. बृ. पं. त्रि. ज.

गा.	उ.	अ.	बृ.	पं.	त्रि.	ज.
१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४

साम्नी गायत्री यथा—अध्या. १।५ कं. 'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि' ।। १२ यथा वा—अ. ६ । २२ कं. 'इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते' ।। १२ साम्न्युष्णिग्यथा—अ. ६ । ६ कं. 'एष ते पृथिव्यां लोक आरण्यस्ते पशुः' ।। १४ यथा वा—अ. ९ पञ्चत्रिंशत्तम कं. 'एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा' ।। १४ साम्न्यनुष्टुब् यथा—अ. ५ । ३५ कं. 'ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वषां देवाना ँ समित्' ।। १६ यथा वा—अ. २ । ३२ कं 'गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म' ।। १६ साम्नी बृहती यथा—अ. २ । ३१ कं. 'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषा-यिषत । १८ यथा वा—अ. ८।१ कं. 'विष्ण उरुगायैष ते सोमस्त ँ रक्षस्व मा

त्वा दभन्'। १८ साम्नी पङ्क्तिर्यथा—अ. २। २८ कं. 'अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि'॥ २० यथा वा—अ. १४। २९ कं. 'नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यंतादितिरधिपत्न्यासीत्'॥ २० साम्नो त्रिष्टुब् यथा—अ. १४।२८ कं. 'एकयास्तुवत प्रजा अधीयंत प्रजापतिरधिपतिरासीत्'। २२ यथा वा तत्रैव—'सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्'। २२ यथा वा—अ. ९।३१ कं. 'अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषम्'॥ २२ 'सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्'॥ २२ यथा वा—अ. ९।३२ कं. 'मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयंस्तानुज्जेषम्'॥ २२ साम्नी जगती यथा—अ. १४।२८ कं. 'पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्'॥ २४ यथा वा—अ. १४।३० कं. 'पञ्चविंशत्या स्तुवताऽऽरण्या पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्'॥ २४ समाप्ता साम्नी पङ्क्तिः।

अथ आर्ची पङ्क्तिर्विविच्य प्रदर्श्यते—

गा.	उ.	अ.	बृ.	पं.	त्रि.	ज.
१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६

आर्ची गायत्री यथा—अ ५।३९ कं. 'देव सवितरेष ते सोमस्त ँ रक्षस्व मा त्वा दभन्'। १८ यथा वा—अ. ४।३ कं. 'वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि'॥ १८ आर्ची उष्णिग् यथा—अ. ६।८ कं. 'ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः'॥ २१ यथा वा—अ. २।१५ कं. 'इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि'॥ २१ यथा वा—अ. २।७ कं. 'सुयमे मे भूयास्तम्। अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्य ँ संभ्रियासम्।' २१ यथा वा—अ. २२।१९ कं. 'देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षित ँ रक्षत'। २१ आर्च्यनुष्टुब् यथा—अ. ९।३४ कं. 'वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम्'। यथा वा—तत्रैव चतुस्त्रिंशत्तमः। 'आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश ँ स्तोममुदजयंस्तमुज्जेषम्'। २४ आर्ची बृहती यथा—अ. ९।१३ कं. 'देवस्याह ँ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाज जेषम्'। १७ यथा वा—१।१६ कं. 'कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वय ँ संघात ँ संघातं जेष्म'। २७ आर्ची पङ्क्तिर्यथा—अ. ४।२२ कं. 'आदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत्स्वाहा'। ३० यथा वा—अ. ६।१८ कं. 'रडेस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो र ँ ह्या ऊष्मणो व्यथिषत्' ३०। यथा वा तत्रैव—'घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा'। ३० आर्ची त्रिष्टुब् यथा—अ. ७।४७ कं. 'अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्य प्रतिगृहीत्रे' ३३। यथा वा—अ. ८।१० कं. 'प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय'॥ ३३ आर्ची जगती यथा—अ. १४।३०

कं. 'सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन्' । ३६

अथ ब्राह्मी पङ्क्तिर्विविच्य प्रदर्श्यते—गा. उ. अ. बृ. पं. त्रि. ज.
३६ ४२ ४८ ५४ ६० ६६ ७२

ब्राह्मी गायत्री यथा—अ. ९।१२ कं. 'एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्' । ३६ यथा वा—अ. ८।९ कं. 'उपयाम गृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ ऋध्यासम्' । ३६ ब्राह्मी उष्णिग् यथा—अ. ९।१२ कं. 'एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्' । ४२ यथा वा—अ. ६।११ कं. 'रेवति यजमाने प्रियं धा आविश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव' । ४२ ब्राह्म्यनुष्टुब् यथा—अ. १।८ कं. 'देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमं अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्' ।। ४८ यथा वा—अ. ३।१९ कं. 'सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन । सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय' ।। ४८ ब्राह्मी बृहती यथा—अ. ४।१५ कं. 'पुनर्मनः पुनरायुर्मआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्' ।। ५४ यथा वा—अ. १५।५८ कं. 'परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद' । ५४ एवं ब्राह्मी पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगती च वेदे यथालक्षणं द्रष्टव्या ।

अथ आर्षी पङ्क्तिर्विविच्य प्रदर्श्यते—गा. उ. अ. बृ. पं. त्रि. ज.
२४ २८ ३२ ३६ ४० ४४ ४८

आर्षी गायत्री यथा—'अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्' । आर्षी उष्णिग् यथा—'अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो बहिः श्रवः' । एवमार्ष्योऽनुष्टुबादयोपि । इति । दैव्यादि च्छन्दोऽष्टकमुदाहृत्य प्रदर्शितम् । गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा यथा—अ. २।४ कं. 'वीतिहोत्रं त्वा, कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि अग्ने बृहन्तमध्वरे ।' यथा वा—'समिधाग्निं दुवस्य त घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन' । एकपदा गायत्री यथा—'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।' यथा वा—'अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा' । स्वराड् गायत्री यथा वा—अ. १७।४ कं. 'समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परे व्ययामसि । पावको अस्मभ्यं शिवो भव' । २५

'हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यं शिवो भव' । २४ प्रतिष्ठा गा. यथा—'त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः' । उष्णिग्गर्भा गायत्री,यथा—अ. २०।४ कं. 'कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गलसत्यराजन्' । २३ द्विपदा गायत्री यथा—'क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि' ।। १४ अनवसाना गा. यथा—अ. २०।१८ 'यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च' । क्वचित्त्रिपादृषिभिः सा पादनिचृद् गायत्री यथा—अ. ६।२४ 'अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्व-ध्वरम्' । २४ विराट् शङ्कुमती गा. अ. १२।७३ 'वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम' । विराट् छन्दो यथा—अ. २।२१ 'देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ स्वाहा वातेधाः' । विराट् द्विपदा यथा—अ. १५।४८ 'अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।' वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम ँ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः' । ३ अनिरुक्ता गायत्री यथा—अ. २९।३७।३८ 'केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथा' । २४ 'जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे अनाविद्धया तन्वा जय त्वा ँ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु' । अवसानहीना गायत्री । अ. ५।३५ । 'त्व ँ सोम तनू-कृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथ ँ स्वाहा ।।' एकपदा विराट् तत्रैव । 'जुषाणो अप्सु राजस्य वेतु स्वाहा' । इति गायत्र्यधिकारः ।

उष्णिक् अ. १५।३७। 'क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्म-जम्भ रक्षसो दह प्रति' । २८ यथा वा—चतुष्पादृषिभिः । अ. ३।६२ 'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' । २८ ककुबुष्णिग् यथा—अ. ३।५९ 'भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेष-जम् । सुखं मेषाय मेष्यै' । २८ यथा वा—'प्रतिगृह्णाम्यग्ने अग्नि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय । मामुदेवताः सचन्ताम्' । परोष्णिग् यथा— अ. १८।५४' 'दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे' । अनवसाना पुर उष्णिग्यथा—अ. ९।६ 'अप्स्वंतरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः' । २६ पुर उष्णिग् यथा—'वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः । ते अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिन् जवमादधुः' । ३० विषमपदा उष्णिग् यथा—अ. २७।१० 'उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् । ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोची ँ ष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः । २ तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । यथो अनक्तु मध्वा घृतेन । ३ मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराश ँ सो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः । ४ अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो

वह्निर्नमसा । अग्नि ँ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ।। ५ अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदम्' इत्यन्तस्य द्वादशर्चस्य, इष्टकायशौ प्रयाजानां याज्यात्वेन विनियोगः । वर्द्धमाना उष्णिग् यथा—अ. ७।२६। 'कोसि कतमोसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम' ।। ३० इति उष्णिगधिकारः ।

अनुष्टुप् । अ. ४।२६ 'प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु' । ३१ यथा वा—अ. ४।३२ 'सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता' ।। ३२ नष्टरूपी अनुष्टुब् विराट् छन्दः । अ. ७।१। 'वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि' । ३१ विराडनुष्टुब् यथा—अ. ४।७ 'आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम' । ३४ यजुरन्तानुष्टुब् यथा—अ. ११।११ 'हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रि ँ हिरण्मयीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्' । ४१ अनुष्टुब् विराड् यथा—अ. १८।३५।३६ सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोहं वाज ँ सनेयमग्ने ।। पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।।' इत्यनुष्टुबधिकारः ।

बृहती यथा—अ. १६।२ 'परीतो षिञ्चता सुत ँ सोमो य उत्तम ँ हविः । दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः' । यथा वा—अ १६।११ 'यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया' ।। ३४ पुरस्ताद् बृहती । यथा—अ. ४।२८ 'परिमाग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतां अनु' । त्रिभिर्जागतैर्महाबृहती 'सोमो राजामृ ँ सुतश्जोषेण जहान्मृत्युम् । स तेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु । अद्भ्यः क्षीरव्यपिबत्क्रुङ्ङांगिरसो धिया । शतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ शुक्रमेधस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु । सोममधो व्यपिब छन्दसा ह ँ सः । शुचिषत् शतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृत मधु' । उपरिष्टाद् बृहती यथा—अ. ११।८३ 'अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारं तारिषं ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे' ।। ३६ ऊर्ध्वबृहती अ. १२।७ 'अग्नेभ्यावर्तिन्नाभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण' ।। ३३ न्यङ्कुसारिणी उरो बृहती स्कन्धोद्गीतो वा बृहती यथा—अ. ११।६३ 'देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण' ।। ३७ पथ्या बृ. षष्ठस्य ३७ 'त्वमङ्ग प्रश ँ सिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो

मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः'। ३३ यथा वा—य्र. ६।३४ 'श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः। ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत। ३७ विपरीता बृ. य्र. ६।३३ 'यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे। तेनास्मै यजमानायोरु राये कृद्ध्यधि दात्रे वोचः'।। ३७ न्यङ्कुसारिणी यथा—य्र. ३।३९ 'अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभिद्युम्नमभि सह आयच्छस्व'।। ३७ सतो बृ. य्र. १२।१०८।१०९।११० 'ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः।। ३८ इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जातुभिरस्मे रायो अमर्त्य। स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम्। इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्त ँ् राधसो राधसो महः। रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम्'। ४० चतुष्पदा बृहती यथा—य्र. २३।७ 'यद्वातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम्। एत ँ् स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्त यासि नः'। पिपीलिकमध्या बृहती यथा—य्र. १७।६७ 'पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्'।।

बृहती पङ्क्तिर्वा य्र. १७।३ 'ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः। घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः'। इति बृहत्यधिकारः।

पङ्क्तिर्यथा य्र. ५।३ 'भवन्तं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ ँ् हि ँ्सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः'।। ४० य्र. ३।५१।५२। 'अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी।। सुसंदृशन्त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी'।। प्रस्तार पं. अ. ३।६१ 'एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहि ँ् सन्नः शिवोऽतीहि'। ४० यथा वा—य्र ४।२३। 'समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि'। ४० चतुष्पदा विराट् पङ्क्तिर्यथा—य्र. ५।४ 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ठ ऋषीणां पुत्रो अभिशस्ति पावा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्य ँ् सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा'। विष्टारपङ्क्तिर्यथा य्र. १२ १०६ 'अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थं दधासि दाशुषे कवे'। ३६ यथा वा—य्र. १२।१०७।८ 'पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे'।। ४१ स्वराट् पङ्क्तिर्यथा—य्र. १३।२ 'अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्। वर्द्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व'।। ४२ प्रस्तारपं. य्र. ८।४३

'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते मरस्वति महि विश्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्' ।। ४२ चतुष्पदा विराट् पङ्क्तिर्यथा—अ. ५।४ 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा । स नः स्योनः सु यजा यजेह देवेभ्यो हव्य ँ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा' ।। ४४ अनवसाना महापङ्क्तिः । अ. ६।१७ 'इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु' ।। ४४ त्र्यवसाना महापङ्क्तिर्यथा—अ. ३।४३ 'उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिव ँ शग्म ँ शंय्योः शंय्योः' ।। महापङ्क्तिर्यथा—अ. ३।१८ इन्धानास्त्वा शत ँ हिमा द्युमन्त ँ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृत ँ सहस्वन्तः सहस्कृतम् । 'अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम्' ।। पङ्क्तिविराड् यथा—अ. १७।७१ 'अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्व ँ साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा' ।। इति पङ्क्त्यधिकारः

त्रिष्टुब् यथा—अ. ४।३७ 'या ते धामानि हविषा यजन्ति ताते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् । गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्' ।। ४३ उपरिष्टा ज्योतिस्त्रिष्टुब् यथा—अ. १२।१११ 'ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्नि ँ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुतकर्ण ँ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा' ।। ४२ विराट् त्रिष्टुब् यथा—अ. २।२२ 'सं बर्हिरङ्क्ता ँ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः संमरुद्भिः । समिन्द्रो विश्वेदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत्स्वाहा' । ४२ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुब् यथा—अ. १७।७४ 'ता ँ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीना ँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्' ।। ४३ शुद्धत्रिष्टुब् यथा—अ. २२।२ 'इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या । सा नो अस्मिन्त्सुत आ बभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ।। सावित्री त्रिष्टुब् यथा—अ. ८।६ 'वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्य ँ सावीः । वामस्य हि क्षयस्व देव भूरेरया धिया वाभभाजः स्याम' ।। यवमध्या त्रिष्टुब् यथा—अ. १६।५१ 'मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं विभ्रदागहि' ।। इति त्रिष्टुब् जगती यथा—अ. ४।३५ 'नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत ँ सपर्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय श ँ सत' ।। ४७ यथा वा—अ. ४।१२ 'श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः' ।। जगती त्रिष्टुब् यथा—'उपज्मनु पवेतसे वतर नदीष्वा । अग्ने

पित्तमपामसि मण्डूकिताभिरागाहसे सन्नो यज्ञं पावकवर्णं ँ शिवं कृधि ॥'
इति जगत्यधिकारः ।

इति पादनियतगायत्र्यादिच्छन्दसामुदाहरणानि कात्यायनोक्तसर्वानुक्रमणिकानुसारेणोक्तानि ।

उत्कृतिश्चतुरधिकशताक्षरा सा यथा—अ. १४।१५ कण्डिकायाम्—'नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे । वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्' । १०४

एवं शताक्षरा अतिकृतिः षण्णवत्यक्षरा संस्कृतिश्च ज्ञातव्या । द्विनवत्यक्षरा विकृतिः सा यथा—अ. १४।१२ कण्डिका—'विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृ ँ हान्तरिक्षं मा हि ँ सीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेनतया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद' ॥ ९२ एवमष्टाशीत्यक्षरा आकृतिर्बोध्या । चतुरशीत्यक्षरा प्रकृतिर्यथा—अ. ५।७ कण्डिका 'अ ँ शुर ँ शुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व । आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम्' ॥ ८४ ॥ अशीत्यक्षराकृतिः सा यथा—अ. १२।४ कण्डिका—'सुपर्णोसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत' ॥ ८०

एवं षट्सप्तत्यक्षरा अतिधृतिर्द्विसप्तत्यक्षरा धृतिश्च विशेषतो ज्ञेया । अष्टषष्ट्यक्षरा अत्यष्टिर्यथा—अ. ८।५३ कण्डिका—'युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् । अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः' ॥ ६८ चतुःषष्ट्यक्षरा अष्टिः सा यथा—अ. १९।४८ कण्डिका—'इद ँ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरं सर्वगण ँ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त' । ८४ षष्ट्यक्षरा अतिशक्वरी सा यथा—अ. ३८।१७ कण्डिकायाम्—'अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः । उत श्रवसा पृथिवी ँ स ँ सीदस्व महा ँ असि रोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषम्मियेद्ध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्' । ६० शक्वरी

षट्पञ्चाशदक्षरा यथा—अ. ३४।५१ कण्डिका—'न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ँ ह्येतत् । यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्य ँ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः' । ५६ 'एवमतिजगती द्विपञ्चाशदक्षरा सा यथा—अ. ९।५ कण्डिकायाम् । 'वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्मसाविषत्' ।। ५८ एवमष्टचत्वारिंशदक्षरा जगती सा यथा—अ. ९।९ 'जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीतो अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः' ।। ४८

इहानुक्तान्युदाहरणानि सर्वानुक्रमण्यादौ विशिष्य परीक्षणीयानि । इति वैदिकच्छन्दसामुदाहरणानि संक्षेपतः प्रदर्शितानि ।।

इति श्रीवृत्तमुक्तावल्यां श्रीकृष्णकविप्रकाशितायां वेदच्छन्दःप्रकरणं नाम प्रथमो गुम्फः ।।

अथ द्वितीयो गुम्फः

अमन्दस्वानन्दप्रकरमकरन्दद्रवभृतं
नखालीकिञ्जल्कद्युतिललितरक्तांगुलिदलम् ।
सदा विद्वच्चेतोमधुपसुखहेतोर्विकसितं
भजे भूयः शम्भोश्चरणयुगमम्भोजसुभगम् ।। १ ।।

न्दे पिंगलनागमुद्भवति यः स्वच्छन्दधीश्छन्दसा-
माचार्यत्वमुपेत्य पूरितकलावर्णप्रसारार्णवः ।
अत्तुं यो विधृतः स्वजातिविदुषा तार्क्ष्येण तस्मै पुनः
स्वां विद्यां प्रतिबोधयन्नतिजवः सिन्धोस्तटान्तं ययौ ।। २ ।।

अस्ति प्रत्यर्थिपृथ्वीपरिवृढवनितानेत्रनीराब्धिनिर्य-
त्कीर्तिश्रीपूर्णचन्द्रद्युतिदलितनभोभूतलध्वान्तजालः ।
आतन्वानः प्रतापावलिमनभिमतक्षोणिसीमान्तभीमां
श्रीमान् राजाधिराजः सततमखगणप्रीतगीर्वाणराजः ।। ३ ।।

जागर्ति ज्वलदुज्ज्वलोज्ज्वलवलज्ज्वालावलीताण्डव-
प्रक्षीणप्रतिपक्षपत्तनपुरग्रामाच्छधामालयः ।

आशाकुञ्जरकर्णतालबहलोद्धूतप्रचण्डानिल-
प्राप्तप्राज्यजवो जगत्यभिनवो यस्य प्रतापानलः ॥ ४ ॥

जातोज्जागर'जेजिया'भिधकरस्तोमात्तभूमीरस-
प्रस्फूर्जद्यवनेन्द्रभास्वति कलिग्रीष्मेऽतिभीष्मे नृणाम् ।
भाग्यैर्यः प्रविराजतां प्रमुदितोऽजस्रं सहस्रं समाः
सद्यः स्वोदयसंहृताऽखिलविपत्पीयूषपाथोधरः ॥ ५ ॥

मान्धाता सगरो भगीरथ इति ख्याता धरारक्षिण-
स्तैः पूर्वं कृतवाजिमेधमुखसद्यज्ञैर्यदेवार्जितम् ।
तद्धर्मामृतमिन्दुसुन्दरयशोवृन्दान्वितं संप्रति
प्राज्ञानां सुखहेतवे वितनुते राजाधिराजः स्वयम् ॥ ६ ॥

अत्यर्थं हयमेधमुख्यविलसद्यज्ञावलोकारिणो
ये पूर्वं युवनाश्ववैण्यसगराद्याः संबभूवुर्नृपाः ।
तेषां कीर्तिरभूच्चिरेण भुवने सर्वत्र जीर्णेव या
तामेतां सुनवीकरोति स भवान् राजाधिराजो नृपः ॥ ७ ॥

भूभृन्मौलिकिरीटलालितपदाम्भोजद्वयस्य प्रभो-
स्तस्यातिप्रसृतप्रसादपरमप्रेमप्रमोदस्पृशा ।
अत्यर्थं कवितोन्मुखेन मनसा नित्यं प्रयुक्तः कविः
श्रीकृष्णः कुरुते रसज्ञसुखदां सद्वृत्तमुक्तावलीम् ॥ ८ ॥

* * *

अथ निखिलच्छन्दोगणघटकप्रथिताष्टगणगतये ।
गुरुलघुलक्षणमादौ कथयामि समस्तसंमतिं ज्ञात्वा ॥ ९ ॥

दीर्घः संयुक्तपरो बिन्दुविसर्गान्वितश्चापि ।
स गुरुरनृजुर्द्विमात्रः, शुद्धैककलो लघुर्भवत्यन्यः ॥ १० ॥

उदाहरणानि—

आली भूषितवेषा शैशवशेषा मनोजमोदमयी ।
शोभासौरभसीमा दृष्टवती मामियं रहसि ॥ ११ ॥

स्फूर्जत्पर्जन्यगर्जद्द्विगुणगिरिगुहागर्भनिर्यत्सगर्व-
प्रोद्यत्पारीन्द्रवर्यप्रकलितपरमध्वानधिक्कारधुर्याः ।

कल्पान्तक्रूरसारस्वतविपुलवलल्लोलकल्लोलसंघ-
र्षोद्घानुद्घाटयन्तो रघुधरणिपतेः सैन्यनिःसाननादाः ॥ १२ ॥
अञ्जनरञ्जनमञ्जुनि खञ्जनतनुखञ्जताकरणे ।
गञ्जितकञ्जवने तव नयने मम मानसं लग्नम् ॥ १३ ॥
रूपपराजितकामः कामतरुः कोपि याचकजनस्य ।
स जयति भृशमभिरामः श्रीरघुरामः सतां मनसि ॥ १४ ॥
लसदपघनरुचिजितनवजलधर, निजजननिवहभजनभवबलधर ।
क्षितिभरहरण नरकमधुमुरहर, जय जय कमलनयन नतपुरहर ॥ १५ ॥
पादान्तस्थो लघुरपि वर्णः कुत्रापि भजति गुरुभावम् ।
अथ संयुक्तपरोऽपि क्वापि बिभर्त्येष लघुभावम् ॥ १६ ॥

यथा—

नन्दकुमार नमस्ते वितर समस्तेश दर्शनं मह्यम् ।
हन्त न किं हरिदश्वः श्वपाकभवनं प्रकाशयति ? १७ ॥
सन्ततगभीरभवह्लदसुखदुःखतरंगमालयाऽऽकुलितः ।
स्वस्थहृदयः कदा स्यां कृष्ण त्वच्चरणतरणिमधिरुह्य ॥ १८ ॥

अथाष्टगणाः—

म-य-र-स-त-ज-भ-न-नाम्नामष्टानां छान्दसगणानाम् ।
भूजलपावककालव्योमार्कनिशाकराह्वयो देवाः । १९
मस्त्रिगुरुर्नस्त्रिलघुर्यरता लघ्वादिमध्यान्ताः ।
सद्भिस्तथैव बोध्या भ-ज-सा गुर्वादिमध्यान्ताः ॥ २० ॥
इह गुरुवर्णत्रितयप्रस्तारे संभवन्त्यष्टौ ।
मयरसतजभनसंज्ञो गणाः क्रमाच्छन्दसां घटकाः ॥ २१ ॥
मगणनगणौ सखायौ, भृत्यौ जानीत भगणयगणौ ।
तगणजगणावुदासौ ततोऽवशिष्टावुभौ रिपू भवतः ॥ २२ ॥
स्याद्वृद्धिः स्थिरकार्यता मगणतो, दद्याद्यकारः सुखं
संपत्ती, मरणं करोति रगणस्तापं जकाराह्वयः ।
तोऽन्तःशून्यफलस्तनोति विषयोद्वासं, सकारः शुभं
दत्ते, भो नगणाद्भवन्ति विजय-श्री-बुद्धि-वृद्ध्यादयः ॥ २३ ॥

अथ द्विगणविचारः –

मित्रान्मित्रं सुखानि प्रकटयति ततो राति भृत्यः स्थिरत्वं
कार्ये युद्धे जयं च प्रथयति बहुधा कार्यबन्धानुदासः ।
मित्राच्छत्रुश्च गोत्रस्वजनरुजमथो भृत्यतो मित्रभृत्यौ
कल्याणायैव वित्तक्षयरिपुभयदावप्युदासीनशत्रू ॥ २४ ॥
अत्रोदासीनमित्रे किमपि कलयतः कार्यविघ्नं पुरस्ता-
द्व्यायोदासभृत्यौ न हि शुभमशुभं चापि चेद्द्वावुदासौ ।
कृत्वोदासीनशत्रू जनयति रिपुतां गोत्रजेऽप्येवमुच्चैः
शत्रोश्चेन्मित्रभृत्यानुभयरिपुगणाः श्रेयसे नैव ते स्युः ॥ २५ ॥

अथ छन्दोनिरूपणम्–

मात्रा-वर्णविभेदेन वृत्तद्वैविध्यमीरितम् ।
तत्र संख्यातमात्राणि वृत्तान्यादौ प्रचक्ष्महे ॥ २६ ॥

तत्रादौ गाथाप्रभेदाः

जानीत गाथिका-गाथा-विगाथोद्गाथिकायुताः ।
गाथिनी सिंहिनी स्कन्धेत्यार्याः सप्तैव कोविदाः ! ! ॥ २७ ॥
भवति चतुःपञ्चाशन्मात्राभिर्गाथिका नाम ।
गाथा तद्द्व्यधिकाभिस्तद्विपरीता विगाथा स्यात् ॥ २८ ॥
उद्गाथा षष्टिकला द्वाषष्टिकला च गाथिनी ज्ञेया ।
तद्विपरीता सिंही भजति स्कन्धा कलाश्चतुःषष्टिम् ॥ २९ ॥

अथ गाथिकालक्षणम् –

यस्यामुभयोर्दलयोः सप्ताधिकविंशतिर्मात्राः ।
प्रत्येकं विधृताः स्युर्गेया सा गाथिका नाम ॥ ३० ॥

सा सर्वगुरुर्यथा –

श्रीरामाङ्घ्रिध्यानप्रोद्भूताऽशेषकल्याणः ।
धर्माध्वत्राताऽद्य श्रीमान् राजाधिराजोऽयम् ॥ ३१ ॥

सर्वलघुर्यथा –

विषमसमरजयपटुतर लसदसिपरिकलितपृथुभुजबल ।
कमठकुलकलशनरवर जय जय नयनिलय जितपरबल ॥ ३२ ॥

अथ गाथालक्षणम् –

पूर्वार्द्धे त्रिंशत् स्युः परतोऽपि च सप्तविंशतिर्मात्राः ।
तर्हि भवेत् सा गाथा तद्विपरीता विगाथा स्यात् ॥ ३३ ॥

No 31282 Date 12.6.69

सापि सर्वगुरुर्यथा–

लोकालोकालोकी लोके लोके विलोकितालोकः ।
पायात् सायं प्रातर्मध्याह्नाद्भावितो भानुः ॥ ३४ ॥

सर्वलघुर्यथा–

धरणिधरधरणभुजवर परिसरपरिलसितवलयसुरुचिरतर ।
प्रकटितरसमयविलसित भवजलनिधिमधुरविधुरुदयसि ॥ ३५ ॥

अथ विगाथाच्छन्दः । सर्वगुरुर्यथा–

गोपीनेत्राम्भोजस्वच्छन्दानन्दसंदोहः ।
कल्याणं ते कुर्यात् कृष्णः कंसादिवैरिविध्वंसी ॥ ३६ ॥

सर्वलघुर्यथा–

समुदितरसभरजलधर तडिदुपमितवसनरुचिसुरुचि ।
जय जय मधुमुरहर पुरहरपरिकलित दलितभवभवभय ॥ ३७ ॥

अथोद्गाथाछन्दः–

यस्यामुभयोर्दलयोस्त्रिंशन्मात्राः क्रमेण विधृताः स्युः ।
उद्गाथा सा ज्ञेया भुजङ्गनाथाऽऽननानननोद्गीता ॥ ३८ ॥

उदाहरणम्–

लक्ष्मीनेत्रानन्दी मन्दीभूताखिलाघसंदोहः ।
श्रीगोपालः पायात् संसारायासराशिविध्वंसी ॥ ३९ ॥

व्रजयुवतिनयनसुखकर मुखरुचिभरविजितसकलकलहिमकर ।
निजजननिवहमहिमकर जय जय रसभरितचरितसमुदयधर ॥ ४० ॥

अथ गाथिनी-सिंहिनी लक्षणम्–

पूर्वार्द्धे त्रिंशत्स्युर्द्वात्रिंशत्स्युस्तथोत्तरार्द्धगताः ।
सा गाथिनीति बोध्या, तद्विपरीता नु खलु सिंहिनी भवति ॥ ४१ ॥

द्वयं यथा गाथिनी—

राधाबाधाहारी भक्ताऽगाधार्तिहृत्कृपाऽऽधारः ।
शोभापारावारः केलीकारः करोतु कामं कृष्णः ॥ ४२

दुरितभरहरणपटुतर भवभवभयभरितशरण गतिशुभकर ।
सुरनरनिकरदुरधिगमसुरुचिरतरचरितभरित जय जय मुरहर ॥४३॥

अथ सिंहिनी—

नारीचेतोहारी तेजोधारो ललामलोलाकारी ।
दत्तां शं कंसारी रासविहारी कृपाकरः कृष्णः ॥ ४४ ॥

कलिकलितकलुषविदलनमगणितगुणभरितचरितचयचतुरिम ।
मह इह महय हृदय मम निरुपमतममितममृतघनमधुरिम ॥ ४५ ॥

अथ स्कन्धकच्छन्दोलक्षणम्—

यत्र चतुर्मात्राकाः प्रसरन्त्यष्टौ गणाः सदा रमणीयाः ।
उभयोरपि दलयोस्तत् स्कन्धाख्यं वृत्तमद्भुतं वित्त ॥ ४६ ॥

अथोदाहरणे—

राका राधाकारा राकाकारा रराज रासे राधा ।
अन्या गोभृत्कन्यास्तारा मन्यामहे सुधन्यं मन्याः ॥ ४७ ॥

अतुलितभुजबलजलनिधिलहरितनिजबलगतुरगतरलितपरबल ।
गुणगणधवलिमधवलित निजजनमतिरमण जयसि रघुकुलपरिवृढ॥४८

इति सर्वगुरुप्रमुखा भेदाः प्रसरन्ति सर्वलघुमुख्याः ।
सर्वेषां वृत्तानां विज्ञेयाः कोविदैः कविभिः ॥ ४९ ॥

अत्रेदं बोध्यम्— एतेषु गाथाप्रभेदेषु चतुष्कलानां गणानां मध्ये षष्ठो गणस्तावज्जगण एव भवति चतुर्लघ्वात्मको वा भवतीति प्राचीननियमानुसारेण सर्वगुरुप्रभेदेषु लघुद्वयसत्त्वेऽपि न विरोधः, तथैव लक्षणनियमात्। इत्यास्तां तावत्।

इति वृत्तमुक्तावल्यां गाथाप्रकरणम्

त्र्यधिका[1] दश विरचय कला, मुहुरेकादशधाम ।
इति दलयुगलयुतं कलय, वृत्तं द्विपथा[2]नाम ॥ १ ॥

यथा—

सनकादिकमुनिदुरधिगमपरमानन्दनिधान ।
पाहि पाहि सीतापते कृतभीताऽभयदान ॥ २ ॥

१. त्रयोदश । २. 'दोहा' हिन्दी छन्दः प्रभाकरः ।

अथ रसिकच्छन्दः-

कुरु शिवमितलघुललितमधिकविमलमतिकलित ।
षडुदितसुखकरचरणमुपचिनु चतुरिमशरण ।
तदिह रसिकमिति जयति फणिपतिविधुमुखमयति ।। ३ ।।

उदाहरणम्—

विधिभवनुतगुणसदन । तनुरुचिलवजितमदन ।।
कलितदनुजबलकदन । निरुपममधुरिमवदन ।।
निखिलनिगमगणगदन । जय मधुवनकृतनदन ।। ४ ।।

अथ रोलावृत्तम्—

सचतुर्विंशतिकलिकं यस्य चरणमभिरामम् ।
द्वे लघुनी खलु नियते भवतो यत्र निकामम् ।
द्वादशकलिकोपरि पुनरुदयति यत्र विरामः ।
तत्किल रोलावृत्तं किमपि वयं कलयामः ।। ५ ।।

इह केचिदेकादश्यां कलायां विरतिमिच्छन्ति, तन्न । काव्यभेदादभेदापत्तेः । वस्तुतस्तु द्वादश्यां कलायां यतिरिहैष्टव्या ।

यथा—

विषयविषाकुलसंततता पहुताशनिकेते ।
लोभमोहमदमत्सरबहुविधवीचिसमेते ।
भवजलधाविह सज्जन मा कुरु मज्जनमेते ।
हरिचरणामलतरणी शरणीकरणीये ते ।। ६ ।।

अथ गन्धानकच्छन्दः—

दशसप्तवर्णविरचितशुभचरणकलितम्
पुनरष्टादशवर्णकृतचरणमतिललितम् ।
ईदृशं विरच्य दलयुगलमखिलमद्भुतम्
गन्धानकमिति वृत्तमुदाहर मोदसुसंयुतम् ।। ७ ।।

यथा—

मुखचन्द्रकान्तिकलितगृहा तिमिरहरणा
लसदम्भोरुहनयना मृदुगतियुतचरणा ।

मन्दहाससौरभभरप्रफुल्लनवमल्लिका ।
भातितरामबलेयमनेकवधूषु मतल्लिका ।। ८ ।।

अथ चतुष्पदी[1]—

या भवति चतुः कलतापरिपुष्कलगणसप्तकसुनिरुक्ता
पुनरन्तविराजितपरमसभाजितविलसदेकगुरुयुक्ता ।।
त्रिंशत्कलपीना जगणविहीना विषमे भृशमभिरामा
सा जयति चतुष्पदिका कविसंसदि दिग्वसुरविसविरामा ।। ९ ।।

यथा—विधिशिवसुरनायकहृत्सुखदायककुशलविधायकनामा
परमप्रियराधामनसिजबाधाहरनवजलधरधामा ।।
गुणगणविस्तारणपटुतरचारणजनसाधारणसामा
स जयति निश्छद्मा मधुवनसद्मा यदुरसि पद्मा रामा ।। १० ।।

अथ धत्ता—

दशकलगणयुक्तं नदतु निरुक्तं वसुकलगणयुतमानयत ।
सत्रिकलं दशकलमुक्तासुविमलधत्तावृत्तं मानयत ।। ११ ।।

इदं वृत्तं द्विपदमेव भवतीति संप्रदायः—

यथा—सज्जनगणरञ्जन परमनिरञ्जन खलकुलगञ्जन चतुरतर ।
लोचनजितखञ्जन भवभयभञ्जन जय शुभसञ्जन कंसहर ।। १२ ।।

अथ धत्तानन्दः—

रुद्रकलागणयुक्तमथ सुनिरुक्तसप्तकलादलितं कलय ।
त्र्यधिककलादशकेन सहिततेन धत्तानन्दं हृदि वलय ।। १३ ।।

यथा—दानवदारण देव दुर्लभसेव कृतभवसागरसंतरण ।
जय जय भृशमभिराम रघुवर राम सकलभक्तकामदचरण ।।१४।।

अथ षट्पदप्रकरणम्

पूर्वं 'काव्यं' नामच्छन्दः—

यस्य चरणे चतुर्विंशतिमात्राः, स्तास्वादौ एकादश द्विपथालक्षणाक्रान्ताः, चतुर्दशी कला लघुरेव । तदनन्तरं द्वौ चतुष्कलौ, तयोराद्यो जगणभिन्नः एकः, तदुत्तरं च द्वे कले मिश्रिते विशकलिते वा, तत्काव्यं[2] नाम छन्दः । चतुर्दश्यां कलायां यतिरपि कार्या, तदभावे तु 'चपला' काव्यं भवति ।

यथा—जय जय नन्दकुमार कमललोचन हृतशोचन
जय जय दानवनिवहदलन भवतापविमोचन ।।

---

१. 'चवपैया' छन्दःप्रभाकरः । २. 'रोला' (छन्दःप्रभाकरे) ।

जय सेवकजनशरणचरण निश्चलकरुणाकर
केशव मामिह् पाहि वदनरुचिविजितसुधाकर ।। १५ ।।

लसदपारकरुणाविसारपरिगलदसारभव
गोपदारगोकुलविहारधृतवेणुताररव ।।
दलितमारशतरूपसार माधुर्यभारधर
निर्विकारनरकृतविचार जय सदवतारकर ।। १६ ।।

अथोल्लाललक्षणम्-

'यस्य चरणे चतुष्कलत्रयं तथैकस्त्रिकल:, एवं पञ्चदशकला [विषमे] विधाय, षट्कल-चतुष्कल-त्रिकलात्मक: (त्रयोदशकलात्मक:) विषमचरण:[1] कार्य: । एवं दलद्वये कृते उल्लालाख्यं वृत्तं भवति ।

यथा–जय जानकीश जगदेकहित जन्मजराजनिदु:खहर ।
जय मन्दहसितसुखकन्दमुख जय जय रघुकुलकेलिकर ।। १७ ।।

काव्यवृत्तं तथोल्लालवृत्तमिति वृत्तद्वयात्कं षट्पदवृत्तम्[2]-

यथा–जय विबुधेशमहेशशेषवागीशकृतस्तव
जय निजजनसुखकरण तरुणकरुणैकसमुद्भव ।
जय वचनामृतदलितकलुषकलिकालमहादव
मायामतपाखण्डखण्डखण्डनसुमहाजव ।
जय देव वल्लभाधीश जय जय सज्जनसेवितचरण ।
जय चारुचरितविरचनचतुर साकारश्रुतिमतधरण ।। १८ ।।

यथा वा-

अतिललामरमणीयधामनिर्दलितकाममद
विगतकामभजनीयनाम मुखकलितकामपद ।
सकलयाममोहितसकामगोपीनिकामसुख
रत्नदामधर सदभिरामतामरसवाममुख ।
उद्दामदितिजसंग्राम जय सदायाम कामदचरण ।
जय चण्डधामसमधाम जय घनश्याम सज्जनशरण ।। १९

---

१. सम: (द्वितीय:, चतुर्थ:) इति युज्यते २. छप्पय (छन्द:प्रभाकरे)

अथ प्रज्झटिकाच्छन्दः-

यस्य पादेषु चत्वारश्चतुष्कला अनियताः, किन्त्वाद्यो जगणभिन्नः, ततोऽन्त्यो जगण एवेति तत्प्रज्झटिकम्[1] ।

यथा–अभिराम कामशतरूपवाम खलकुलविराम कृतभक्तकाम ।
धृतरत्नदाम लोचनललाम निजदिव्यधाम मयि धेहि राम ॥२०॥

अथारिल्लम्-

यस्य चरणे जगणभिन्ना द्विलघ्वन्ताश्चत्वारश्चतुष्कला भवन्ति, तदरिल्लमिति लक्षयन्ति । उदाहरणेषु पुनः सगणचतुष्टयोत्तरं द्वे लघुनी इत्येव दृश्यते ।

यथा–बलधारण वारणमानविदारण । भवकारण दानववंशनिवारण ।
मुखचन्द्रसुधाकृतलोचनपारण । जय कृष्ण कृपाकर सेवकतारण ॥२१॥

अथ पादाकुलकम्-

इदमेव (अरि०) अन्त्येन गुरुणा षोडशकलचरणं पादाकुलकम् ।

यथा–वदनसुधाकरमधुरिमसदनम् । निजतनुरूपपराजितमदनम् ।
भूभरहृतये रिपुकुलकदनम् । प्रणमत मङ्गलनामनिगदनम् ॥२२॥

अथ पद्मावतीच्छन्दः-

यस्याश्चरणे अन्तगुर्वन्ताश्चतुष्कला अष्टौ गणाः सा पद्मावती । चरणकला द्वात्रिंशत् । अस्यां विषमस्थाने जगणं वर्जयन्ति । दशकलोऽष्टकलश्चतुर्दशकलश्चेति वर्गत्रयेण कलानां विन्यासः कार्यः । वर्गान्त्यकलायाः पराऽमिश्रितत्वमात्रं विवक्षितं, न तु पादान्तपातित्वमिति तत्त्वम् ।

यथा–गोपालसखायं गोकुलरायं हृतमायं जलधरकायम्
निजभक्तसहायं दलितापायं सुखदायं विपदवसायम् ॥
मधुविपिननिकायं मधुरच्छायं कलितायं मुरलीगायम्
तं कलय सदा यं ध्यायं ध्यायं पतति (ज)रामापदि नायम् ॥ २३ ॥

यथा वा-

व्रजभूनवनागर मधुरिमसागर लसदुज्जागरमहिमानम्
जनमोदविधायक मङ्गलदायक हतसुरनायकमदमानम् ॥

---

१. पद्धरि (छन्दःप्रभाकरे)

गोवर्द्धनधारक भवसन्तारक निर्वृतिकारकगुणगानम् ।
प्रणमामि सुधादनमानसमादनमुरलीवादनसुविधानम् ॥ २४ ॥

अथ कुण्डलिका–

द्विपथावृत्तं काव्यवृत्तं चेति वृत्तद्वयात्मकं कुण्डलिकाच्छन्दः । द्विपथान्ते काव्यादौ, काव्यान्ते द्विपथादौ च लाटानुप्रासो नियमेन कार्य इति संप्रदायः । उक्तञ्च जयगोविन्दवाजपेयिभिः ।

'यमकादिरलंकारो न वृत्ताङ्गं तथापि तत् ।
विशेषणीकृतं लक्ष्यप्रयोगनियमात्तथा' ॥

यथा– वृन्दाविपिने वन्दिता वृन्दारकनिकरेण ।
राजति कापि कलिन्दजा तरलतरङ्गभरेण ।
तरलतरङ्गभरेण भरितभूमीतलशोभा
निरवधिनिजलावण्यकलितलोचनयुगलोभा ॥
उन्मीलितकमलौघमिलितमदलुलितमिलिन्दा
मञ्जुलतरजलकेलिवशितगोपीजनवृन्दा ॥ २५ ॥

अथ गगनाङ्गम्[1]–

यस्य चरणः पञ्चविंशत्या कलाभिः, विंशत्याऽक्षरैः पूर्यते, किन्त्वादौ एकश्चतुष्कलोऽन्ते च गुरुर्नियतस्तद् गगनाङ्गं नाम छन्दः । केचिद् द्वादशभिर्यतिमिच्छन्ति ।

तद्यथा– आननसुरुचिवितानसरसिजकाननशोचना
खञ्जनचतुरिमगञ्जनसुहृदनुरञ्जनलोचना ।
नन्दतनयहृदसन्दसकलसुखकन्द गुणाधिका
रासधरणिनवलासवसतिरिह सा सखि राधिका ॥ २६ ॥

अथ द्विपदीच्छन्दः–

यस्या अर्द्धे षोडशकलः ततो द्वादशकलो गणः, गणयोरन्ते यतिश्च, तद्द्विपदम् ।

यथा–दानवगञ्जन मुनिजनरञ्जन भयभञ्जनगुणभरिते ।
त्वयि मम वन्दनमिह रघुनन्दन जगदानन्दनचरिते ॥ २७ ॥

अथ खञ्जा–

यस्या अर्द्धे एकचत्वारिंशत्कलाः, षट्त्रिंशता लघुभिः शेषे रगणेन संपन्नाः सा खञ्जा ।

---

१. गगनाङ्गना, (छन्दःप्रभाकरे) ।

यथा–अमलतरकमलमुख-यमलतरुशमलहर-
लसितसितहसितदलितहिमकिरणनामदम् ।
भजत करकलितरसचलितमृदुचलितरव-
ललितसुखफलितगलितगतिमुरलिकानदम् ॥ २८ ॥

अथ शिखा–

यस्याः पूर्वार्द्धे चतुर्विंशतिर्लघवस्ततो जगणः, उत्तरार्द्धेऽष्टाविंशतिर्लघवस्ततो जगणः सा शिखा ।

यथा–मदनमदकदन सुखसदन निजवदनरुचिविलसितनिकुञ्ज ।
अमृतभरभरणकर सुखदतरसलिलधर जय जय मधुरगुणपुञ्ज ॥२६॥

अथ माला–

यस्याः पूर्वार्द्धे षट्त्रिंशल्लघवस्ततो रगणस्ततो गुरुद्वयम् । उत्तरार्द्धन्तु गाथोत्तरार्द्धमेव सा माला ।

तव गिरिधरण विषमविरहजरुजि किमपि वधिक इह कलयति
रतिपतिरतिशयवेदनाभारम् । तदुपरि शशी विधत्ते ज्वरमुज्ज्वल-
चन्द्रिकाकारम् ॥ ३० ॥

अथ चुलियाला–

द्विपथोपरि सुखकारणं गणं पञ्चकलमेकमिहाऽऽनय ।
तच्चुलियालावृत्तमिति दलयुगले सविवेक वितानय ॥ ३१ ॥

यथा–वृन्दावनघनकुञ्जगृहकलितकेलिकमनीयकलाधर ।
जय जय सुन्दररसिकवर विकचकञ्जरमणीयकुलाधर ॥ ३२ ॥

अथ सौराष्ट्रम्–

द्विपथावृत्तमशेषमुच्चर कृतविपरीतगति ।
मानय वृत्तविशेषमिह सौराष्ट्रमुदारयति ॥ ३३ ॥

यथा–मोहितगोकुलदार निगमसार सुन्दरचरित ।
जय जय नन्दकुमार नित्यमलौकिकगुणभरित ॥ ३४ ॥

अथ हाकलिवृत्तम्—

कलय चतुर्दशकलकलितं हाकलिवृत्तमिदं ललितम् ।
सगणभगणलघुवर्णमितं विलसदेकगुरुयुतममितम् ॥ ३५ ॥

यथा–आननिर्जितचन्द्रकला लोचनलज्जितकञ्जदला ।
केलिविवर्द्धितकामबला जयसि सदा कृतदृष्टिबला ॥ ३६ ॥

अथ मधुभारवृत्तम्–
मुखजगणसारवसुकलमुदार ।
मधुभारवृत्तमानय सुवृत्त ॥ ३७ ॥

यथा–अयि नन्दबाल करुणैकपाल ।
मयि धेहि देव निजभक्तिमेव ॥ ३८ ॥

यथा वा–
हरकण्ठवाममणिवर्यदाम ।
तव नाम राम मम चित्तधाम ॥ ३९ ॥

अथ दीपकच्छन्दः–

यस्य चरणे आदौ जगणभिन्नश्चतुष्कलः, ततो नगणस्ततो गुरुर्लघुश्चेति तद्दीपकम् ।

यथा–शमलं दलय नाम कुशलं कलय राम ।
भवदन्यमिह यामि शरणं न कलयामि ॥ ४० ॥

यथा वा–
तिमिराणि दलयन्ति हृदयानि ललयन्ति ।
रघुनाथचरितानि निजभव्यभरितानि ॥ ४१ ॥

अथाभीरकच्छन्दः–
रुद्रकलामयसार - चरणचतुष्कमुदार ।
सुन्दरमिदमाभीर - वृत्तमुदितमतिधीर ॥ ४२ ॥

यथा–मोहितगोकुलदार पङ्कजदलसुकुमार ।
दूरीकृतभयभार जय जय नन्दकुमार ॥ ४३ ॥

अथ दण्डकलच्छन्दः–

यस्य चरणे चत्वारश्चतुष्कलाः, ततःषट्कलः, ततश्चतुष्कलौ गणौ ततो गुरुः, इत्येवं क्रमः स दण्डकलो नाम । चरणकलाः ३२ ।

यथा–उन्मदनवजलधरसममधुरिमभरलीलारसवारिधिलसितम्
राकोदितहिमकरमञ्जिममदहरमुनिमानसमोहनहसितम् ।

समुदितसप्तस्वरसततविकस्वरमुरलीरवखुरलीकलितम्
कुञ्चितकुटिलालकमद्भुतबालकमहमीले लोचनललितम् ।। ४४ ।।

अत्र दण्डकले चरणादौ कलाद्वयं न्यूनं क्रियते चेत्तदा लघुदण्डकल उत्प्रेक्षितो भवति। उदाहरणमन्यत्र द्रष्टव्यम्। एवं पद्मावत्यादौ सर्वत्र लघुपद्मावत्यादय उत्प्रेक्षणीयाः।

अथ सिंहविलोकितम्ः—

यस्य चत्वारश्चतुष्कला अनि(य)तास्तुर्यः सगण एव तत्सिंहविलोकितम्।

यथा—नवमञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतम्। रसवलितललितशिशुकेलिरतम्।
वशवर्तिसकलपशुपालमतम्। हृदि कलय वहसि यदि पुण्यशतम्।।४५।

अथ प्लवङ्गमच्छन्दः—

यस्य चरणे आदौ गुरुस्ततश्चत्वारश्चतुष्कलास्ततो लघुस्ततो गुरुः, स प्लवङ्गमः।

यथा—उन्मीलति किल दिशि दिशि भूरुहवल्लरी
कूजति पिककुलमसहमनोभवझल्लरी।
मानिनि पश्यतु भवती मधुरयमागतः
संप्रति जल्पति पतिमबला सखि रागतः ।। ४६ ।।

अथ लीलावतीः—

यस्याश्चरणे द्वात्रिंशन्मात्राः सा लीलावती।

यथा—सेवकहृदयमरालमनोरथपूरकविमलयशोभरसरितम्
विधिशिवशुकसनकादिगीततरसततभीतभयहारकचरितम्।
दानवनिवहनिवारणकारणमतिशयसुखपूरितदशहरितम्
प्रणमत नन्दतनयमतिमञ्जुलजनमोहनमङ्गलगुणभरितम् ।। ४७ ।।

अथ हरिगीतच्छन्दः—

यस्याश्चरणे प्रथमं पञ्चकलस्ततः षट्कलस्ततस्त्रयः पञ्चकलास्ततो गुरुरित्यष्टाविंशतिः कलास्तद्धरिगीतं नाम।

यथा—नतपङ्कजासनकलितशासनमघनिरासनपण्डितम्
व्रजभूमिपूषणमसुरदूरषणमुरुविभूषणमण्डितम्।
जगदेकवन्दनहृदयनन्दनचरितचन्दनचारिणम्
भज पल्लवाधरमुदितभाधरमिह धराधरधारिणम् ।। ४८ ।।

अन्त्यगुरुमात्रेण हीन**मनुहरिगीतम्** ।

यथा–नवकोकिलाकुललतिकलकलकलितजागरकाम
मतिधीरमलयसमीरघोरणिवलितमधुकरदाम ।
सखि भूरिकुसुमपरागपूरितकुञ्जमञ्जुलधाम
परिपश्य मानिनि मधुदिनं रमणेन सन्तनु साम ।। ४९ ।।

यदा त्वनुहरिगीतस्यादौ कलाद्वयं वर्द्धते तदा **मन्द्रगीत**मुत्प्रेक्षितं भवति ।

यथा–जलधरधामधारण मोहतारण भवनिवारणशील
मधुमुरनरकगञ्जन दुरितभञ्जन नयनरञ्जनलील ।
त्रिभुवनभव्यभावक निजजनावक कलितपावकपान
जय रसकेलिभाजन सुरसभाजन कृतसभाजनमान ।। ५० ।।

अथ कलाद्वयह्रासे **लघुहरिगीतम्**–

यथा–मल्लिकानववल्लिकासुमतल्लिकारसपीन
मालिकानवमालिकाकमलालिकामधुलीन ।
सोऽधुना विकरालकालकलाकुलोद्यत एत्र
कुन्दकाननकौतुकी मा धाव मधुकर देव ।। ५१ ।।

अथ त्रिभङ्गी–

पद्मावत्या एव चरणे दशभिस्ततो द्विरष्टभिस्ततः षड्भिश्चेद्यतिर्भवति, तदा त्रिभङ्गीनामकं छन्दः ।

यथा–वृन्दावनचारिणि नित्यविहारिणि (कलिमलहारिणि) हृतबाधे
हरिविरहनिवारिणि बहुसुखकारिणि भृशमभिसारिणि हृदगाधे ।
जितजगदौपम्ये निभृतनिशम्ये भक्तिनियम्ये दलिताधे
गुरुगुणगणरम्ये निगमागम्ये मुनिजननम्ये जय राधे ।। ५२ ।।

यथा वा–

शशिगर्वविमोचनरुचिभररोचनतिलकितरोचनशुभभाले
खञ्जनसंकोचनपङ्कजशोचनचपलविलोचनमृगबाले ।
वृषभानुतनूजे सुरकृतपूजे कोकिलकूजे सुखशाले
जय सकलसभाजितरूपसभाजितहरितनुराजितवनमाले ।। ५३ ।।

अथ दुर्मिलाच्छन्दः—

यस्याश्चरणे द्वात्रिंशत्कलिकाः, षोडशभिश्च यतिः, यतिश्च नेह पदान्तत्व-मात्रं किन्तु परकलयाऽमिश्रितत्वाऽभावमात्रम् । अस्याः सगणान्तत्वनियममपि केचिदिच्छन्ति ।

यथा—स्नेहरसौघसततसन्दीपितमन्दीकृतकुलगतिसन्तमसः

कलयति सखि सन्तापमसह्यं किमपि कथापथमेति न मम सः ।।

उरुनिश्वासनिवहझञ्झानिलवर्द्धितशिखोदारसञ्ज्वलितः

स्फुरति विरहदीपो हृदि सदने कलुषकलङ्ककज्जलाकुलितः ।।५४।।

अथ हीरच्छन्दः –

यस्य चरणे आदौ गुरुस्ततश्चत्वारो लघव इत्येवं क्रमेण षट्कलत्रितयं विधायाऽन्ते रगणः क्रियते, तद्धीरच्छन्दः । तच्च प्रतिषट्कलं यत्या रहितं सहितं च । आद्यं सुहीरम्, अन्त्यं हीरम् ।

क्रमेण यथा

रासललितलासकलितहासवलितशोभनम्

लोकसकलशोकशमलमोकमखिललोभनम् ।

जातनयनपातजनितशातमुदितभारसम्

भाति मदनमानकदनमीशवदनसारसम् ।। ५५ ।।

खञ्जनवरगञ्जनकरमञ्जनरुचिराजितम्

कामहृदभिराममतिललामरतिसभाजितम् ।

नीलकमलशीलमुदितकीलविरहमोचनम्

जातिकुटिलयाति सुदति भाति तव विलोचनम् ।। ५६ ।।

अत्र षट्कलस्य सर्वलघुत्वे, तुर्याक्षरस्यैव गुरुत्वे वा छन्दोऽन्तरमुत्प्रेक्षितं भवति । तच्च लघुहीरकं परिवृत्तहीरकं चेति व्यवहर्तव्यम् ।

द्वयमपि यथा–

विरहगरलभरिततरलकुटिलसरललोचना

चरणनखरकलितमदनयुवतिमदविमोचना ।

अमलकमलरजनिरमणमुकुरविलसितानना

त्वमिह जयसि सुतनु किरणवलितसकलकानना ।। ५७ ।।

विलसदङ्गरुचितरङ्गललितरङ्गरञ्जिनी

लसदपारपटिमभारमदनदारगञ्जिनी ।

सकलयामसुखदवामतरललामलीलना
जयसि नाम हृदभिरामरतिनिकामशीलना ।। ५८ ।।

अथ जनहरणं नामच्छन्दः–

यस्य चरणे त्रिंशदमिश्रिताः कला अन्ते द्वे मिश्रिते कले, दशभिः,द्विरष्टभिः ततः षड्भिश्च यतिः, तज्जनहरणम् । अत्र गुर्वन्तरप्रवेशे त्रिभङ्गीतो भेदो न स्यादिति वदन्ति । चरणकला द्वात्रिंशत् ।

यथा–अनवरतभजनपरसुरनरमुनिवरहृदयसदनचरभयहरणम् ।
परिलसितविमलतरनरवरकिरणभरसकलतुहिनकरजयकरणम् ।
ततसुरपतिभवविधिकलितममृतनिधिभृशभवजलनिधिकृततरणम्
मम मनसि करुणयुतमयतु निगमनुतमिह दशरथसुत तव चरणम् ५९

अथ मदनदीपनच्छन्दः–

यन्मदनगृहमिति प्राचीनैर्व्यवहृतम् । सगणान्ताष्टकलेन वर्द्धिता पद्मावत्येव मदनदीपनं नाम ।

यथा–वनचन्दकिहर्षणमलिकुलकर्षणमतिसुखवर्षणगुणशरणं सौभगधरणम्
पिककीरचकोरकहरिणकिशोरकहृत्सञ्चोरकरुचिकरणं मानसहरणम् ।
शुककोकमरालकपन्नगबालकचयसञ्चालकसुखभरणं भुवनाभरणम्
वपुरिदमुद्भासय मामिह दासय मानमुदासय धृतिदरणं परुषाचरणम्
।। ६० ।।

अथ झुल्लनच्छन्दः–

यस्य चरणे सप्त पञ्चकलास्ततो द्वे कले तज् झुल्लनं नाम । यद्यपि पञ्चकलभेदा अविशेषेणैव गृहीतास्तथापि प्रतिगणं द्वितीया कला परया कलया मिश्रितोद्वेजिकेत्यनुभवसाक्षिकम् ।

यथा–शेषपतगेशविबुधेशभुवनेशभूतेशसविशेषमुनिदेशधरणी
कन्दलितसुन्दरानन्दमकरन्दरसमज्जनमिलिन्दभवसिन्धुतरणी ।
ज्ञानमण्डनपरा[1] कर्मखण्डनधरा शमनदण्डनपराभूतिहरणी
नित्यमिह वक्ति मुनिवृन्दमनुरक्तिमज्जयति हरिभक्तिरासक्तिकरणी ।। ६१

१. स्वभावकुटिला यतिः गतिर्यस्य तत् ।

अष्टचत्वारिंशत्[1]कल**मुपभ्फुल्लम्** । तस्मिंश्चोपान्त्यो गुरुरन्त्यो लघुर्नियतः ।

यथा—

चण्डभुजदण्डसदखण्डकोदण्ड (श) शिखण्डशरखण्डभ्फरदण्डितविपक्ष
पर्वभृतशर्वरीनाथरुचिगर्वहरसर्वहृदखर्वसुखलीलनवलक्ष ।
दुष्टनररुष्टतरपुष्टनयजुष्टजनतुष्टमतिघुष्टचरितौघकृतिदक्ष
तत्क्षणसमक्षकृतरक्षणसपक्षगणलक्षितसुलक्षण जयेश गतलक्ष ॥ ६२ ॥

कलाद्वयाधिक्येन एकोनचत्वारिंशत्कलचरणमपि संभवति, तच्च **सुभ्फुल्लनं नाम** ।

यथा—

चूतनवपल्लवकषायकलकण्ठबलमञ्जुकलकोकिलाकूजितनिदानम्
माधुरीमधुरमधुपानमत्तालिकुलवल्लकीतारभङ्कारसुखदानम् ।
चारुमलयाचलोद्यातपवमानजवजागरितचित्तभवसायकवितानम्
पश्य सखि पश्य कुसुमाकरमुदित्वरं मा कलय मानसे मानमतिमानम् ॥६३॥

चत्वारिंशत्कल**मतिभ्फुल्लनपि** स्वीकार्यम् ।

यथा—

कासकैलाससविलासहरहासमधुमाससविकाससितसारससमानगति
शारदतुषारकरसारघनसारभरहारहिमपारदविसारसमुदारमति ।
बालकमृणालमृदुमालतीजालरुचिचालितविशालविबुधालयमरालतति
राजमृगराजवर राजते तव यशो राम सुरराजसुसभाजितसमाजनति ॥६४॥

अथ महाराष्ट्रनामच्छन्दः—

यस्य चरणे चतुष्कलाः सप्तगणाः किन्तु सप्तमो गुर्वन्त एव । तत एको लघुः । दशभिरष्टभिरेकादशभिश्च यतिस्तत् **महाराष्ट्रम्** ।

यथा—हरितनुघनदामिनि कुञ्जस्वामिनि गजगामिनि सुखदासि
नूतनरतियामिनि निरुपमकामिनि राधानामिनि भासि ।
कमपि प्रियदोषं परिहर जोषं किमु तोषं नहि यासि ?
शृणु मम मुखलापं वचनकलापं परितापं किमु रासि ॥ ६५ ॥

---

१. अष्टत्रिंशत्, इति युज्यते ।

यथा वा–

क्वचिदपि धृतमन्दर सुखितपुरन्दर गुणगणकन्दर वीर
क्वचिदपि भूधारण वारणतारण शोकनिवारणधीर ।
क्वचिदमितविरोचनसुतमदमोचन रघुकुलरोचनहीर
जय राम सदा जितलोकसभाजित कनकविराजितचीर ॥ ६६ ॥

अथ चतुर्वचनं नामच्छन्दः–

यस्याऽसमयोश्चरणयोः षोडश कलाः, समयोश्चतुर्दश, तच्चतुर्वचनम् ।

यथा–(जय) जगदुज्जागरमधुरिमसागर नवनागर रसकेलिनिधे ।
जय रघुनन्दन जगदानन्दन निरवधिवन्दन शीलनिधे ॥ ६७ ॥

इति श्रीतैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-श्रीजयसिंहमहाराजाधिराजसंमान्य-मानकविकलानिधिश्रीकृष्णभट्टविरचितछन्दोमुक्तावल्यां द्वितीयो गुम्फः ।

अथ तृतीयो गुम्फः

गुरुचरणौ फणिराजं गणनाथं च प्रणम्य शतकृत्वः ।
मूलानुसारिकथया प्रथयामो वर्णवृत्तानि ॥ १ ॥

श्री छन्दः–

सा श्रीः । यो गः ॥ १ ॥ **यथा**–श्रीर्मे सा स्तात् ॥ २ ॥

मधुवृत्तम्–

युग लघु, भण मधु ॥ ३ ॥ **यथा**–कुरु शिव, शुभमिह ॥ ४ ॥

कामच्छन्दः–

द्वौ गौ यौ तौ कामो वृत्तम् ॥ ५ **यथा**–वन्दे रामं रुच्या वामम् ॥६॥

अथ सारच्छन्दः–

ग्लौ नु धेहि सारमेहि ॥ ७ ॥ **यथा**–राम राम, धेहि धाम ॥ ८ ॥

यथा वा–

त्वत्कनाम । शर्मधाम ॥ ९॥ **यथा वा**–धेहि राम । कण्ठदाम ॥१०॥

अथ मही–

लगौ धृतौ भवेन्मही ॥११॥ **यथा**–हरिः शिवः । शिवो हरिः ॥१२॥

यथा वा–गुरुः पतिर्मतिर्गतिः ॥ १३ ॥

अथ ताली–

त्रिर्वर्कैः सन्धेया । सा ताली विज्ञेया ॥ १४ ॥

यथा–सानन्दं स्वच्छन्दम् । तं देवं वन्देहम् ॥ १५ ॥

अथ प्रिया–

मध्यगश्चेल्लघुः । सा प्रिया भण्यते ॥ १६ ॥

यथा–सा भवे सारदा । सेव्यतां शारदा ॥ १७ ॥

यथा वा–

राधिकानायकम् । नौमि शंदायकम् ॥ १८ ॥

अथ शशिच्छन्दः–

लघुर्द्वौ गुरूचेत् । निरुक्तः शशी सः । १९ ॥

यथा–व्रजेशं भजामः । भवे शं व्रजामः ॥ २० ॥

यथा वा–

नुमस्तं समस्तम् । जगद्यः पुनीते ॥ २१ ॥

अथ रमणच्छन्दः–

रमणो विहितः । सगणो निहितः ॥ २२ ॥

यथा–भवतश्चरणं, करवै शरणम् ॥ २३ ॥

यथा वा–कमलाधव हे । भ्रमणं न वहे ॥ २४ ॥

पञ्चालच्छन्दः–

लघ्वन्तमादेहि पञ्चालमाधेहि ॥ २५ ॥

यथा–हेराम मामेहि । भद्राणि मे देहि ॥ २६ ॥

अथ मृगेन्द्रः–

गमध्यगणे हि । मृगेन्द्रमवेहि ॥ २७ ॥

यथा–अघानि धुनीहि । गिरीश पुनीहि ॥ २८ ॥

अथ मन्दरच्छन्दः–

आदिगमुच्चर मन्दरमुद्धर ॥ २९ ॥

यथा–हे भव लालय । पालय पालय ॥ ३० ॥

कमलच्छन्दः–

नगणमवत । कमलमयत ॥ ३१ ॥

यथा–भुजगवलय शमिह कलय ॥ ३२ ॥

अथ तीर्णा–

चत्वारश्चेद्वक्रा वर्णाः तीर्णाख्यं तच्छन्दो भव्यम् ॥ ३३ ॥

बाला लोला लीलाशाला ।

यथा--दृष्टया दृष्ट्वा पीता हाला ॥ ३४ ॥

अथ धारि–

रं विधेहि लं वधेहि । धारिवृत्तमत्र वित्त ॥ ३५ ॥

यथा–जातभूरिभक्तपक्ष । शम्भुदेव रक्ष रक्ष ॥ ३६ ॥

नगाणिका–

जमुच्चरन् गुरूत्तरम् । नगाणिकामिहानयेः ॥ ३७ ॥

यथा–भवैधना निबन्धना । मृषा जनास्तिधंधना ॥ ३८ ॥

यथा वा–

अनोहरम् मनोहरम् । स्थितं व्रजे हरिं भजे ॥ ३९

संमोहाच्छन्दः–

मान्ते संयुक्तौ, वक्रौ चेदुक्तौ । संमोहावृत्तं तत्स्यान्मे वित्ताम् ॥४०॥

यथा–उद्यत्संग्रामं रक्षोभिः कामम् । सद्धर्मारामं वन्दे तं रामम् ॥ ४१ ॥

अथ हारीतवृत्तम्

तादुत्तरं चेद् वक्रद्वयं स्यात् । हारीतवृत्तं तन्मग्नचित्तम् ॥ ४२ ॥

यथा–देवेश शम्भो दासोऽस्म्यहं भोः । त्वं दासवित्तं त्वय्येव चित्तम् ॥४३॥

अथ हंसवृत्तम्–

भादुपरिस्थं वक्रयुगं चेत् । हंस इतीदं सन्तनु वृत्ताम् ॥ ४४ ॥

यथा–तद्भवपीडा-हारकमुच्चैः । कृष्णपदाब्जं भावय चेतः ॥ ४५

यथा वा–निर्जितकामं लोचनवामम् । दुःखविरामं तं भज रामम् ॥ ४६ ॥

यमकच्छन्दः—

द्विलघुतनु नगणमनु । यमकमुरु-धिषण कुरु ॥ ४७

यथा–अचलभृति दुरितहृति । हृदयलयमिह कलय ।। ४८ ।।
यथा वा--शशिवदन जितमदन । जय नयनकृतदयन ।। ४९ ।।

अथ शेषराजच्छन्दः–

विद्वच्चेतःस्वादे षड्वक्रा यत्पादे । तच्छेषाख्यं वृत्तं विज्ञेयं नो वित्तम् ।।५०।।
यथा--भूयो दत्तानन्दं लीलाकृत् स्वच्छन्दम् ।
ब्रह्म श्रुत्या गीतं वन्दे चित्तानीतम् ।। ५१ ।।

अथ तिलकाख्यच्छन्दः—

सगणद्वितयं कुरुवर्णचयम् । तिलकाख्यकलं तनु वृत्तमलम् ।।५२।।
यथा--वरशैलधरं भवदुःखहरम् । भज सर्वपरं भजनीयतरम् ।। ५३ ।।

विज्जोहा–

रद्वयाकारभृद् यत्र पादो भवेत् । वित्तविद्योतिकावृत्तमेतद् बुधाः ।।५४।।
यथा–कृष्णतेजोघटासङ्गिविद्युच्छटा ।
भक्तबाधाहरा भाति राधाऽभिधा ।। ५५ ।।

चतुरंसच्छन्दः–

निगमलघूर्ध्वं यदि गुरुयुग्मम् । तदिह सुवृत्तं भण चतुरंसम् ।।५६।।
यथा--मधुवनलोलं विहरणशीलम् । हृतभवकीलं भज घनलीलम् ।।५७।।
यथा वा--विरचितरासं विहितविलासम् । कृतवनलासं भजत सहासम् ।।५८

अथ मन्थानच्छन्दः–

तद्वन्द्वमादाय पादं समाधाय । मन्थानवृत्तं तदाख्याहि सुप्रज्ञ ।।५९।।
यथा–भक्त्येकसिद्धान्तविश्रान्तिकृत्स्वान्त ।
सेवस्व तद्धाम नन्दात्मजं नाम ।। ६० ।।

शङ्खनारीवृत्तम्–

यकारद्वयात्मा धृतो यत्र पादः । तदा तत्र वृत्तं भवेच्छङ्खनारी ।।६१।।
यथा–हृताशेषबाधा विलासैरगाधा । कृतानङ्गबाधा हरौ भाति राधा ।।६२।।
यथा वा--विचाराधिरोहं परिब्रूहि कोऽहम् ।
समुच्छिद्य मोहं मिमीथाः शिवोहम् ।। ६३ ।।
यथा वा--हृताशेषवादः समुद्धूतसादः ।
स्फुरद्दिव्यनादः कदा ते प्रसादः ।। ६४ ।।

अथ मनोहरच्छन्दः–

जयुग्मललाम पदं कलयाम । मनोहरनाम तदस्य वदाम ॥ ६५ ॥

अथ दमनकच्छन्दः–

नयुगलमनु मतिमभितनु । दमनकमिति कथय झगिति ॥ ६६ ॥

यथा--सुजनशरण सुखदचरण । पशुपतनय शमिह जनय ॥ ६७ ॥

अथ समानिका–

रोत्तरं जमुच्चरेः प्रान्ततो गमुद्धरेः ।
सप्तवर्णगा कवे सा समानिका भवे ॥ ६८ ॥

यथा--हीरहारहारिणं पीतचीरधारिणम् ।
केलिकुञ्जचारिणं नौमि भव्यकारिणम् ॥ ६९ ॥

अथ सुवासच्छन्दः–

सलघुचतुष्टयभगणमिहानय । कथय सुवासकमिति तदुपासक ॥७०॥

यथा--मनसिजसायकनयनसहायक । नवनटनायक जय सुखदायक ॥७१॥

अथ करहंसच्छन्दः–

निगमलघुवाम जगणकृतधाम । कथय करहंसमतुलमतिशंस ॥७२॥

यथा--परमशुभक्षाम हृदयमणिदाम । गिरिधरणनाम शरणमुपयाम ॥७३॥

अथ मुक्तागुम्फच्छन्दः–

वक्राः सप्ताऽऽधातव्याः पादे पादे दातव्याः ।
मुक्तागुम्फाख्यं वृत्तं जानीतेदं सद्वृत्तम् ॥ ७४ ॥

यथा--विद्वच्चेतोविश्रामं प्रावृट्पाथोदश्यामम् ।
नाऽवैद्वेदो यं कामं वन्दे तं देवं रामम् ॥ ७५ ॥

विद्युन्माला–

यस्यामष्टौ वक्रा युक्ताः पादे स्युः सुप्रज्ञैरुक्ताः ।
सा विज्ञेया विद्युन्माला चेतोहर्त्री यद्वद्बाला ॥ ७६ ॥

यथा--या शोभापीयूषाऽगाधा चेतोबाधाहर्त्री राधा ।
कल्याणौघं सा मे दत्तादन्तः सत्ता प्रेमाऽऽकृष्टा ॥ ७७ ॥

प्रमाणिका–

लघुर्गुरुर्निरन्तरं यथाक्रमं निधीयताम् ।
तदा प्रमाणिकाभिधं सुवृत्तमष्टवर्णकम् ॥ ७८ ॥

यथा–विलासिनीविलासिनं तडिद्दुकूलभासिनम् ।
समोद-रासलासिनं भजे निकुञ्जवासिनम् ।। ७९ ।।

माणवकक्रीडा–
भं गपरं द्विः प्रणयेदित्युदितं यस्य पदम् ।
माणवकक्रीडमिति ज्ञेयमहो वृत्तमदः ।। ८० ।।

यथा–भक्तमनस्तापहरं रूपसुधावारिधरम् ।
चारुतडिज्जैत्रपटं नौमितरं दिव्यनटम् ।। ८१ ।।

अथ मल्लिका–
वक्रशुद्धसुक्रमेण दीव्यदष्टवर्णशालि ।
उत्क्रमात्प्रमाणिकैव मल्लिकाख्यवृत्तमस्ति ।। ८२ ।।

यथा–रासलासमुक्ततन्द्र केलिसिन्धुपूर्णचन्द्र ।
भक्तपक्षबद्धकक्ष कृष्ण कृष्ण रक्ष रक्ष ।। ८३ ।।

तुङ्गच्छन्दः–
नगणयुगलयुक्तं यदि गुरुयुगमुक्तम् ।
तदिह भवति तुङ्गं रुचिरवरणसङ्गम् ।। ८४ ।।

यथा–हरिसहकृतरासा कलितललितलासा ।
दलितविरहबाधा जयति जयति राधा ।। ८५ ।।

कमलवृत्तम्–
कलय लघुपञ्चकं रगणसमुदञ्चकम् ।
कमलमिति वृत्तकं भवति हृतचित्तकम् ।। ८६ ।।

यथा–सकलसुखसाधिका विरहरयबाधिका ।
अखिलभुवनाधिका जयति हृदि राधिका ।। ८७ ।।

यथा वा–
व्रजभुवि विहारिणं मधुमणिहारिणम् ।
हृदयसुखकारिणं भजत गिरिधारिणम् ।। ८८ ।।

अथ श्लोकलक्षणम्–
षष्ठं स्याद् गुरु सर्वत्र लघु पञ्चममक्षरम् ।
समयोः सप्तमं श्लोके ज्ञेयं विषमयोर्गुरुः ।। ८९ ।।

यथा–अमुना यमुनाकूलवटमूलविहारिणा ।
हारिणा हरिणा हन्त हेलितं हृदयं मम ॥ ९० ॥

महालक्ष्मीवृत्तम्–

रत्रयं यत्र सन्दीयते पादशोभा समानीयते ।
तन्महालक्ष्म्यदो नामकं वृत्तमन्तःसुधाऽऽचामकम् ॥ ९१ ॥

यथा–पण्डितालीमनोहारिणी कापि वाणी चमत्कारिणी ।
मोदवृन्दैकविस्तारिणी मन्मुखान्तर्जनोद्धारिणी ॥ ९२ ॥

अथ सारङ्गिका–

सलघुचतुष्कं निहितं गयुगलमन्ते विहितम् ।
सगणसमेतं सुविदः ! कलयत सारङ्गमदः ॥ ९३ ॥

यथा–कुचजितनारङ्गिकया दृगुदितसारङ्गिकया ।
विरचितमन्दस्मितया विदलितचित्तोऽस्मि तया ॥ ९४ ॥

अथ पाईत्ता–

चत्वारः स्युर्यदि गुरवः शुद्धा वेदाः[१] सुविदुरवः ।
अन्ते वक्रो भवति सदा पाईत्ताख्यं जयति तदा ॥ ९५ ॥

यथा–चामं चामं चरितरसान्नामं नामं निजशिरसा ।
श्यामं वामं कमलदृशं कामं रामं भजत भृशम् ॥ ९६ ॥

अथ कमला–

वसुलघुपरिकलिता मुखहृतगुरुललिता ।
मृदुपदगतिरमला विलसति किल कमला ॥ ९७ ॥

यथा–भवजलनिधितरणं निखिलसुजनशरणम् ।
हृदयतिमिरहरणं कलयत हरिचरणम् ॥ ९८ ॥

अथ बिम्बवृत्तम्–

भवति लघुपञ्चकं चेत् तदनु रगणक्रमं चेत् ।
वदनगुरुलग्नचित्तम् कलय ननु बिम्बवृत्तम् ॥ ९९ ॥

---

१. चत्वारो गुरवः, शुद्धाः (लघवः) वेदाः (चत्वारः) अन्ते वक्रः (गुरुः) तदा 'पाईत्ता' च्छन्दः ।

यथा–कलितकमलाविलासं ललितरसरासलासम् ।
सततकमनीयशीलं भजत हरिमभ्रनीलम् ।। १०० ।।

तोमरच्छन्दः–

सगणैकमञ्जिमपालि जगणद्वयद्युतिशालि ।
इति तोमराभिधवृत्तमतुल विधेहि सुवृत्त ।। १०१ ।।

यथा–गुणगानगुम्फितसाम दुरितौघपावननाम ।
भज राममेव ललाम-मभिराममद्भुतधाम ।। १०२ ।।

अथ नवाक्षरप्रस्तारः [मालीवृत्तम्]–

भूखण्डख्याता वक्रा वर्णाः शोभन्ते यस्यां पादे पादे ।
तद्रूपा मालीनाम्ना वृत्तं संप्रोक्तं लोके छन्दोविद्भिः ।। १०३ ।।

यथा–नृत्यन्ति स्वैरं विद्युन्माला गर्जन्ति स्निग्धाम्भोभृज्जालाः ।
वान्त्येते मन्दाः शीता वाताः क्व प्रेयस्यस्मिन् काले याता ।।१०४।।

अथ दशाक्षरा–

यदि तोमरस्य मुखे धृतं गुरुरूपमक्षरमादृतम् ।
तदवेहि **संयुतनामकं** ननु वृत्तमस्त्यभिरामकम् ।। १०५ ।।

यथा–चतुरङ्गसंततनर्तिनः पवमानसंमितवर्तिनः ।
तव वाजिनो विहगोपमा विलसन्तु जातनभःक्रमाः ।। १०६ ।।

अथ चम्पकमाला–

स्याद् भगणान्ते यद्गुरुयुग्मं संतनुत द्विःसंगतमेवम् ।
चम्पकमालानाम सुवृत्तं राजति भूयो मोहितचित्तम् ।। १०७ ।।

यथा–पीतदुकूलं मङ्गलमूलं सेवितहंसापत्यसुकूलम् ।
सेवकलोकानामनुकूलं तं शरणं कुर्वे हृतशूलम् ।। १०८ ।।

अथ मणिबन्धाख्यम्–

चम्पकमाला निश्चरमा चेतसि धार्या सा परमा ।
स्यान्मणिबन्धं वृत्तमदः शंसत संसन्मध्यसदः ।। १०९ ।।

यथा–अम्बरविद्युद्द्योतधरं कुन्द-बलाकाजातभरम् ।
मोदनलीलावारिभरं भावय कञ्चिन्मेघवरम् ।। ११० ।।

अथ सारवतीवृत्तम्

भत्रयमानय भव्ययुतं वक्त्रलसद्गुरुवर्णरुतम् ।
सारवती किल वृत्तमिदं रञ्जयते सततं सुविदम् ।। १११ ।।

यथा–केन शिवाय समर्प्य शिरः संपणितासि परैव गिरः ।
सुन्दरि यत्र रता पुरुषे कायमशेषमलंकुरुषे ।। ११२ ।।

यथा वा–

कस्य हरिष्यसि तापकरं सुन्दरि भूरिवियोगभरम् ।
यस्य कृते पुलकौघधरं मण्डयसीह शरीरवरम् ।। ११३ ।।

अथ सुषमाच्छन्द :

वक्रद्वितयं भूयः सगणस्तद्वत्पठनीयं सुज्ञ पुनः ।
वृत्तं सुषमानामाकलितं ज्ञेयं विबुधैरुच्चैर्ललितम् ।। ११४ ।।

यथा–शोभासदनं जाग्रन्मदनं लोके तरुणीचेतःकदनम् ।
मुक्तावदनन्तद्युतिरदनं भाते तव तत्कान्तं वदनम् ।। ११५ ।।

अथ हंसी–

मन्दाक्रान्ता कविवरहिता प्रान्ते सप्ताक्षरविरहिता ।
सा विज्ञेया विमलमतिभिर्नाम्ना हंसी विबुधततिभिः ।। ११६ ।।

यथा–कुञ्जे कुञ्जे कृतविलसनं विद्युन्मालाललितवसनम् ।
चन्द्रज्योत्स्नाविशदहसनं वन्दे कृष्णं व्रजनिवसनम् ।। ११७ ।।

अथामृतगति :

सलघुचतुष्टयभगणं रचयतरामनुसगणम् ।
इति सुविनिर्मितचरणाममृतगतिं विद सुकवे ।। ११८ ।।

[ह्यमृतगतिर्धृतसुगणा]

यथा–विलसितजीवितमदना विधुशतनिर्जयिवदना ।
मुनिमनसामपि कदना तनुरुचिशोभितसदना ।। ११९ ।।
अयि वृषभानुजलतिके तरलतडिद्गुणततिके !
मयि भवती शुभमतिके ! गतिरिह नित्यमगतिके ।। १२० ।।

[**अथैकादशाक्षरा**]

भत्रयशालिगुरुद्वययुक्तं यच्चरणं कविभिः सुखमुक्तम् ।
तत्कलयामृतनिर्भरसारं लालसरोरुहवृत्तमुदारम्[1] ॥ १२१ ॥

यथा–दिव्यकृपावरुणालयमेकं निर्मितचित्तसुधारससेकम् ।
हर्षितबर्हिणकारितकेकं नौमि हरिं धृतरुच्यतिरेकम् ॥ १२२ ॥

सुमुखी–

सलघुचतुष्टयभद्वितयं तदनु गुरुं कुरु मुक्तभयम् ।
भण सुमुखीति सुवृत्तमिदं वशयति वल्गु गिरासुविदम् ॥ १२३ ॥

यथा–कति कति भूमिभृतो न गताः कतिमनुजेषु कृता नरता ।
अलमधुना कविते मम हे रघुपतिवर्णनमेष वहे ॥ १२४ ॥

शालिनी–

यत्पादे स्युर्निर्मिता वेदवक्त्रा भूयो रम्यं रद्वयं चापि वक्त्रम् ।
इत्थं यत्या योजितेयं मनोज्ञा प्राज्ञैरुक्ता शालिनी शोभमाना ॥१२५॥

यथा–बाला लोला कोमलालापशाला मल्लीमालाशालिनी चारुभाला ।
कामज्वालाहारिपीयूषधारा दृष्टचा दृष्टा सुन्दरी साऽभिसारा ।१२६।

यथा वा–

देशे देशे मञ्जुला कुञ्जवीथी कुञ्जे कुञ्जे पुष्पसौरभ्यसारः ।
पुष्पे पुष्पे पञ्चबाणस्य बाणा बाणे बाणे कामिनां प्राणपातः ॥१२७॥
स्थाने स्थाने भान्ति सौधा विशालाः सौधे सौधे कामिनीनां विलासाः ।
लासे लासे नेत्रचाञ्चल्यशोभा नेत्रे नेत्रे मत्ततायाः प्रकाशः ॥१२८॥

अथ रथोद्धता–

रोत्तरं नगणरौ लघुर्गुरुः कार्यमित्युदयशालि यत्पदम् ।
सा फणीन्द्रमुखपङ्कजोद्गता राजते सुवितता रथोद्धता ॥ १२९ ॥

यथा–मण्डपीकृतजगत्त्रयोदरे मण्डनीयति सतारकं विधुम् ।
कीर्तिरद्भुतकलापटीयसी दिक्तटीषु भवतो नटीयते ॥ १३० ॥

अथ स्वागता–

अक्षरं तु नवमं दशमं चेद् व्यत्ययेन निहितं खलु यस्याम् ।
एतदेव हि रथोद्धतवृत्तं स्वागतेति कविभिः कृतनाम ॥ १३१ ॥

---

१. दोधकवृत्तमिति वृत्तरत्नाकर-छन्दःप्रभाकरादयः ।

यथा—चञ्चदञ्चलतिरोहितदीपज्योतिरुल्लसदुरोजयुगश्रीः ।
काऽपि कामरमणीरमणीया मन्दमन्दमुपयाति वधूटी ॥ १३२ ॥

अथ दमनकच्छन्दः—

प्रतिपददशलघुकलितं वदनवलितगुरुललितम् ।
दमनकमिति वदत बुधा अमृतमिव पिबति वसुधा ॥ १३३ ॥

यथा—जय जय गिरिवरतनये विधिविधुहरकृतविनये ।
निरयिणि शिशुगृहधनये मयि शुभशतमिह जनयेः ॥ १३४ ॥

अथ तालच्छन्दः—

अष्टवर्णधोरणी विधीयतां शुद्धवक्रसुक्रमेण दीयताम् ।
अन्ततो लमध्यसद्गणान्वितं तालवृत्तमेतदेव निर्मितम् ॥ १३५ ॥

यथा—उन्नमत्सुधापयोधरत्विषं कंसकेशिमुख्यदानवद्विषम् ।
भक्तलोकचित्तचारुचन्दनं संततं नमामि नन्दनन्दनम् ॥ १३६ ॥

अथ माला—

रुद्रा वक्रा वर्णा यस्यामस्यन्ते यत्या युक्ता विज्ञै रुक्ता रस्यन्ते ।
तन्मालाख्यं वृत्तं चित्ते मन्वीथा यत्पीयूषस्रोतस्तुल्यं तन्वीथाः ॥१३७॥

यथा—धीरं धीरं धारासारैर्वर्षन्तः पान्थस्त्रीणां चेतोधैर्यं कर्षन्तः ।
संप्रत्येते मेघा उच्चैः सज्जन्ते मानिन्योऽन्तर्मानं कृत्वा लज्जन्ते ॥ १३८ ॥

अथेन्द्रवज्रा—

यस्यां तकारद्वितयं जकारः प्रान्ते निधेयं गुरुवर्णयुग्मम् ।
मात्राभिरष्टादशसंमिता सा सैकादशार्णा जयतीन्द्रवज्रा ॥ १३९ ॥

यथा—लीलाललामा ललिता लताभा लोलेक्षणा लास्यपरा लसन्ती ।
लावण्यलक्ष्मीर्लुलितालकान्ता लभ्या कदा सा भुवनेत्र कान्ता॥ १४०॥
चञ्चच्चमत्कारिचकोरचञ्चूचाञ्चल्यचातुर्यचयैकचौरैः ।
आकुञ्चितैरञ्चितलोचनान्तैः काले कदा मां कलयिष्यतीयम् ॥ १४१॥
वक्षोरुहोद्भासितपद्ममाला प्रत्यङ्गदीव्यज्जलबिन्दुजाला ।
राजद्वपुर्वारिविहारकाले कासारतः कापि ससार बाला ॥ १४२ ॥

चन्द्रानना चम्पकचारुगात्रा दृङ्मात्रसंचारितकामयात्रा ।
केलाकलालालितकोमलाङ्गी दृष्टया कुरङ्गीनयना निपीता ।।१४३।।

अथोपेन्द्रवज्रा–

यदीन्द्रवज्रा लघुवर्णवक्त्रा विधीयते नागपतेर्निदेशात् ।
उपेन्द्रवज्रेति तदा कवीन्द्रैर्विरच्यते चारुकवित्वकीर्त्यै ।। १४४ ।।

यथा–प्रयुक्तकालागरुधूपिताशं सखीजनोद्भासितपुष्पतल्पम् ।
ज्वलत्सचन्द्रोज्ज्वलवर्तिदीपं निशामुखे वासकवेश्म भाति ।। १४५।।

अथोपजातिः–

यत्रेन्द्रवज्रा प्रथमे तृतीये द्वितीयतुर्योर्यदुपेन्द्रवज्रा ।
सा प्राज्ञवर्यैरुपजातिरुक्ता मनोज्ञविच्छित्तिविशेषयुक्ता ।। १४६ ।।

यथा–पाटीरवाटीषु कृतप्रचारस्तरङ्गिणीवारिभवद्विहारः ।
मल्लीलताऽऽलिङ्गनमोदधीरः प्रवाति कान्तेऽद्य सुखं समीरः ।।१४७।।

अथाख्यानकी–

आख्यानकीं तां प्रवदन्ति नित्यं यदीन्द्रवज्राचरणेन युक्तान् ।
उपेन्द्रवज्रा चरणान् वहेत् त्रीन् विशेषविच्छित्तिमतः कवीन्द्राः ।।१४८

यथा–मामि......................दाम्बुजन्मनीस्फुरञ्चिदानन्दभर दसौ ।
सुरेन्द्रभोगीन्द्रमुनीन्द्रमानसैरनारतं य......................।। १४९ ।।

अथ वंशस्थवृत्तम्–

उपेन्द्रवज्राचरणेषु चेद्भवन्त्युपान्त्यवर्णा लघवः सुखप्रदाः ।
दिनेशसंख्याक्षरशालिवृत्तकं वदन्ति वंशस्थमिति प्रसिद्धिमत् ।।१५०

यथा–नमामि ते नाथ पदाम्बुजन्मनी स्फुरच्चिदानन्दमरन्दसौरभे ।
सुरेन्द्रभोगीन्द्रमुनीन्द्रमानसैरनारतं यत्र मधुव्रतायितम् ।। १५१ ।।

अथेन्द्रवंशा–

वंशस्थवृत्ते यदि पूर्ववर्णकाः राजन्ति वक्राः सुखसारहेतवः ।
।। १५२ ।।

यथा–प्रोद्भूतरक्ताङ्कुरवृन्दशालिनः सुपुष्पिता भान्ति रसालशाखिनः ।
वर्मावृताः कार्मुकबाणपाणयो वीरा बतैते स्मरचक्रवर्तिनः ।। १५३।।

अथ विद्याहारः[1]–

पादे पादे यस्मिन् भास्वत्संख्या वर्णाः ।
सर्वे वक्राः सद्योमुह्यच्चेतःकर्णाः ।
सुज्ञैरुक्तं दोषैर्मु(क्तं) यत्या युक्तम्
विद्याहाराख्यं तद्वृत्तं श्रीसंयुक्तम् ॥ १५४ ॥

यथा–रक्षोवक्षोविक्षोभाय प्रोद्यद्बाणं भास्वद्भल्लोत्कृत्ताशेषारातिप्राणम् ।
पुण्यारण्यक्ष्मासंचारात्किञ्चित्क्षामं मेघश्यामं सेवे नामं नामं रामम् ॥ १५५ ॥

अथ भुजङ्गप्रयातम्–

चतुःसंख्यका यस्य पादे यकाराः सदा मोदयन्ते समन्तादुदाराः ।
भुजङ्गप्रयाताभिधं वृत्तमेतत्सुधापातिहेतुः सतां मानसे तत् ॥ १५६

यथा–चिरं चन्द्ररोचिःसमुच्चारचञ्चच्चलच्चामरश्रीचमत्कारचारु ।
समस्तात्रनिच्छन्नसुच्छायभूयःसमुच्छ्रायशालिच्छविच्छत्ररम्यम् १५७

दरीभृद्दरीदारणोद्रिक्तदृप्यत्समुत्तुङ्गमातङ्गलक्ष्मीनिवासम् ।
अधस्ताद्भुजङ्गावलीभञ्जनेच्छाखुराग्रक्षतक्षोणिवाजीन्द्रयुक्तम् १५८

चमूचङ्क्रमाक्रान्तवेलान्तवेगोच्छलत्सिन्धुकल्लोलनिस्सानघोषम् ।
पुरः प्रत्यगाशाचलोद्दण्डदण्डस्फुरत्सूर्यचन्द्रध्वजश्रीमनोज्ञम् ॥ १५९

प्रतापप्रभा–कीर्तिशोभासमूहैः समुद्भूतसर्वत्रिलोकान्धकारम् ।
नताशेषराजन्यमूर्द्धाग्ररत्नत्विषाकीर्णसिंहासनप्रान्तदेशम् ॥ १६० ॥

अविश्रान्तजाम्बूनदासारधाराकृतार्थीकृताशेषविद्वत्समूहम् ।
महाराजराजेन्द्र राजाधिराज त्वदीये भुजाग्रे समुद्भाति राज्यम् १६१

अथ लक्ष्मीधरः–

स्याच्चतुर्भी रकारैर्युतं यत्पदं भूरिविद्वन्मनोदत्तभूयोमदम् ।
भाति लक्ष्मीधराख्यातमेतत्स्फुटं वृत्तमाकृष्टसभ्यश्रवःसंपुटम् ॥ १६२

यथा–शातकुम्भस्फुरत्कुम्भसंभावितौ यौवनोदारकुम्भीन्द्रकुम्भोपमौ ।
तारहारप्रभाभारसंदीपितौ दृप्यतस्तावकौ तन्वि वक्षोरुहौ ॥ १६३॥

---

१. विद्याधारी (छन्दःप्रभाकरे)

यथा वा–

दीव्यदिन्दुद्युतिद्योतमाने घनध्वान्तधाराधरध्वंसकृद्धामनि ।
मानमाद्यन्मनोमन्मथोन्माथने मोदमानं मनाङ् मन्मनो मज्जतु ।१६४।

यथा वा–

खञ्जनाऽऽकारभागञ्जनाकारणे कञ्जनामप्रथाभञ्जनाभङ्गुरे ।
विस्फुरन्मानिनीमानसङ्कोचने लोचने ते मनोरोचने राजतः ॥१६५॥

अथ तोटकम्–

अतिचारुसकारचतुष्कभृतं चरणं खलु यस्य विभाति कृतम् ।
इति तोटकवृत्तमिदं कथितं कविराजिविराजिगुणग्रथितम् ॥१६६॥

यथा–तनुकान्तिजितामृतसान्द्रघनं तडिदुज्ज्वलचारुलसद्वसनम् ।
मुरलीरवकूजितमञ्जुतरं प्रणमामि परं परितापहरम् ॥ १६७ ॥

अथ सारङ्गरूपच्छन्दः–

लघ्वन्तदोव्यद्गणानां चतुष्केन यस्याङ्घ्रिराभाति सद्वर्णयुक्तेन ।
सारङ्गरूपाख्यमत्युत्तमं तत्प्रमोदावहं वृत्तमेतद्बुधा वित्त ॥ १६८

यथा–कन्दर्पसन्दर्पसन्दोहहारीणि लोकत्रयीकोटिकल्याणकारीणि ।
लक्ष्मीश ते लीलितानि स्मरन्नेव सद्यो भवेयं कृतार्थः कदा देव
॥ १६६ ॥

अथ मुक्तादाम–

जकारचतुष्टयमानय दक्ष भृशं च चतुश्चरणानिति रक्ष ।
सुवृत्तमिदं मधुराक्षरधाम भवेदिह मौक्तिकदामसुनाम ॥ १७० ॥

यथा–सुधामयतोयदसुन्दरकाय विराजितगोपवधूसमुदाय ।
धराधरधारणधीर सुधीर नमो जय नन्दनिकेतनहीर ॥ १७१ ॥

अथ मोदकवृत्तम्–

तोटकवृत्तमुखे गुणमण्डित वर्णचतुष्टयमस्ति सुपण्डित ।
यत्प्रथमं ध्रियते कविनायक मोदकवृत्तमिदं सुखदायक ॥ १७२ ॥

यथा–कोटिकलाधरमञ्जुललीलन गोपवधूरतिभावसुशीलन ।
दानववंशकृताधिकनिग्रह पाहि हरे नववारिदविग्रह ॥ १७३ ॥

अथ तरलनयनाच्छन्दः–

निगमनगणसहितचरणमनणु रचय सुमतिशरण ।
तरलनयनमिदमुदयति परमसुखद जगति जयति ॥ १७४ ॥

यथा—शमलहरण कमलचरण सकलभुवनकुशलकरण ।
मुदितनिखिलसुजनशरण जयसि सततमचलधरण ।। १७५ ।।

सुन्दरीच्छन्दः—

नगणभद्वितयीरगणान्वितो भवति यच्चरणः सुखदायकः ।
जयति वृत्तमिदं खलु सुन्दरीत्युदित[1]नामकमद्भुतभोगिना ।।१७६।।

यथा—वनलता न लता पदपल्लवा कमलिनीमलिनीकृतमानसा ।
अतनुदा तनुदा तरुमञ्जरी सुमदनो मदनोऽद्य वियोगिनोः ।। १७७ ।।

मायाच्छन्दः—

चत्वारश्चेन्मञ्जिमभाजो गुरुवर्णा भूयो भाते यत्र भकारो गुरु-युग्मम् ।
शुद्धौ वक्रौ यत्र च वर्णौ क्रमवन्तौ मायावृत्तं तत्खलु गेयं हृतचित्तम् ।। १७८ ।।

यथा-कुञ्जे कुञ्जे कोकिलकान्ता मधुमत्ता भाते कञ्जश्रेणिषु कान्ता मधुमत्ता ।
भृङ्गाः सङ्गायन्ति रसालं वनभाजं कान्तं वामा याति रसालम्बन-भाजम् ।। १७९ ।।

अथ तारकच्छन्दः—

सलघुद्वयभत्रितयं गुरुयुग्मं चरणे खलु यस्य भवेदतिरम्यम् ।
वद तारकवृत्तमिदं रमणीयं मधुराक्षरसारसुधारसरुच्यम् ।। १८० ।।

यथा—सविलाससुलासकलागणशाली शिखिपिच्छकिरीटधरो मणिमाली ।
वृषभानुसुतामुखकञ्जरताली कलयत्वनिशं कुशलं वनमाली ।।१८१।।

अथ कन्दच्छन्दः—

भुजङ्गप्रयाताभिधं वर्द्धते यत्र कलामात्रतः शेमुषीविस्तरादत्र ।
भवेत्तत्र सुप्राज्ञ कन्देति सन्नाम सदा वृत्तमत्युत्तमं माधुरीधाम ।।१८२।।

यथा—लसन्मञ्जुगुञ्जाफलोदारहारेण सदाऽमन्दवृन्दाटवीकेलिकारेण ।
मुहुर्जातगोवर्द्धनाद्रिप्रचारेण हृतं मे मनो दिव्यगोपीकुमारेण ।।१८३।।

अथ कमलावली—

भादनु सलघुचतुष्टयभद्वय-मस्ति चरणमितिरित्थमनामय ।
सन्तनु ननु कमलावलिनामक-वृत्तमतुलमिदमद्भुतधामक ।।१८४।।

---

१. द्रुतविलम्बितमिति नामान्तरम् ।

यथा–नूतनजलदमनोहरविग्रह जातदनुजदितिजौघविनिग्रह ।
भालकलितविलुलत्कुटिलालक पालय -निजजनमद्भुतबालक
॥ १८५ ॥

प्रहर्षिणी–

लक्ष्मैतन्मनजरगाः क्रमेण कार्या विश्रामस्त्रिभिरथ दिग्भिरत्र धार्यः ।
भोगीन्द्रस्फुटमुखचन्द्रगा सुधेयं विख्याता कविषु भवेत्प्रहर्षिणीति
॥ १८६ ॥

यथा–अध्यक्षिणदमवेक्ष्य पङ्कजातं सञ्जातं विकसितमापतन्मिलिन्दः ।
श्यामायाममृतमयूखमीक्षमाणः सम्मोदप्रचयमचीकरच्चकोरः
॥ १८७ ॥

अथ हरिणप्लुता–

पठितं रहितप्रथमाक्षरं द्रुतविलम्बितमाद्यतृतीययोः ।
गदिता कविभिर्मतिशालिभिर्भवति सा भुवने हरिणप्लुता ॥ १८८ ॥

यथा–अपि कोपि पिको विपिने रटन्विकुरुते कुरुते न मनो मम ।
क्व नु सा प्रमदा प्रमदावहा हरति या रतिया विरहज्वरम् ॥ १८९ ॥

प्रभावतीवृत्तम्–

तान्ते गुरुर्नजरगणा यदि क्रमाद्वृत्ता भवन्त्यनुपमरीतिशालिनः ।
मोदावहा भवति यतिर्युगग्रहैः सा जीयते गरिमवती प्रभावती
॥ १९० ॥

यथा–कूजत्पिकीकलकलकाकलीकले कुञ्जालये पुलकविसंष्ठुलाकृतिः ।
कृष्णोऽधुना तव मुखचन्द्रचन्द्रिकातृष्णोच्चलन्नयनचकोरकः स्थितः
॥ १९१ ॥

इयमेव लघ्वादिश्चेत्**कलावती** स्यात्–

यथा–समुल्लसत्कुसुमपरागधोरणी पुरो यथा प्रसभमुदेति कानने ।
तथोत्थितां मदननृपस्य लक्षये समन्ततो भुवि चतुरङ्गिणी चमूः
॥ १९२ ॥

अथ वसन्ततिलका–

वक्त्रद्वयं जगणतः सगणद्वयं स्यादन्ते तथैव यगणः सततं नियोज्यः ।
फुल्लद्वसन्ततिलकाञ्चितसौरभाढ्यं छन्दो वसन्ततिलकाभिधमेत-
दुच्चैः ॥ १९३ ॥

यथा–कूर्मैककन्दभुजगाधिपदिव्यनालं स्वर्णाद्रिकर्णिकमुदञ्चितदिग्दलौघम् ।
भूमीहरिच्छदपरिच्छदमम्बराऽलि श्रीरामचन्द्र भवतो यश एव पद्मम्
॥ १९४ ॥

अथ चक्रपदम्–

भाऽनुगकविवरवसुलघुकलितं राजति किमपि सगणयुतिललितम् ।
तत्पदमखिलविबुधगणभणितं चक्रपदकमिदमभिगुणगणितम्
॥ १९५ ॥

यथा–सन्ततमपघनसुललितकमला लीलितविलसितविजितसुकमला ।
लोचनमुखकरपदशुभकमला भासि तरणिरधितरुणिमकमला ॥ १९६ ॥

भ्रमरावलिः–

सगणान् कुरु पञ्च विचार्य विशुद्धमते
भ्रमरावलिनामकमेतदुदारगते ।
जयतीह सुवृत्तमनेककवीन्द्रमतं
कलपञ्चदशाक्षरभूषितपादततम् ॥ १९७ ॥

यथा– विलसज्जलसज्जलसद्घनवृन्दरुचः
पृथुदानपयोभरनिर्झरसङ्घमुचः ।
मणिसुन्दरकुम्भमिलद्रविबिम्बभृतः
प्रसरन्ति गजास्तव राघव युद्धजितः ॥ १९८ ॥

सारङ्गी–

तिथ्याख्यातप्रोद्यत्संख्या वर्णा यस्याः स्युः पादे
विभ्राजन्ते सर्वे वक्राश्चित्तान्तर्दत्तास्वादे ।
सारङ्गीति प्रोक्ता सर्वैश्छन्दोविद्भिर्विज्ञाता
पीयूषाक्तैः शब्दैरर्थैर्युक्ता सम्यक्प्रोद्गाता ॥ १९९ ॥

यथा– अम्भोगर्भैरुद्गच्छद्गम्भीरध्वानं गर्जद्भिः
प्रायः प्रेयोविश्लिष्टप्राणेशीजीवानर्जद्भिः ।
रम्भास्तम्भाऽऽकम्पाऽऽरम्भिप्रातर्वातोद्यन्नोदैः[1]
प्रावृट्कालप्राविर्भूतैर्व्योम च्छन्नं पाथोदैः ॥ २०० ॥

---

१. प्रातर्वातेन उद्यन् (उत्पद्यमानः) नोदः प्रेरणं येषां तैः (पाथोदैः) ।

यथा–कामस्यैषा सेना काचित्सम्प्रत्युच्चैरुद्याता
शम्पाशक्त्या कम्पा लोके लोके लोके विख्याता ।
संख्यातीता पान्थश्रेणी झञ्झाभिर्भीतिं नीता
कुञ्जे कुञ्जे केकाशब्दैरेका कीर्तिः सङ्गीता ।। २०१ ।।

चामरम्–

वक्रशुद्धसुक्रमेण सप्तवारमुच्चरन्नन्त एकवक्रवर्णमानयेति दुष्करम् ।
चामराख्यवृत्तमत्र वित्त चित्तमोहनं नागराजभाषितं समस्तशर्म-
दोहनम् ।। २०२ ।।

यथा-हंसवंशसप्रशंसमिन्दुबिम्बगञ्जनं क्षीरसिन्धुनीरबन्धुहीररूपभञ्जनम् ।
शुक्लचामरौघचारु लोकचित्तरञ्जनं भाति राम तावकं यशः-
प्रमोदसञ्जनम् ।। २०३ ।।

निशिपालच्छन्दः–

वक्र[1]रगणत्रितयमग्ररगणान्वितं यत्र चरणं भवति वर्णगणभावितम् ।
वृत्तमिदमेव निशिपाल इतिनामकं वित्त हृतचित्तममृतौघ-
निजधामकम् ।। २०४ ।।

यथा–पारदतुषारभरनारदतनूपमा सारघनसारमणिहाररुचिसंक्रमा ।
शारदविशालपटशारदघनोज्ज्वला भाति तव भूमिधव कीर्तिरति-
शीतला ।। २०५ ।।

पदहंसकम्–

लघुयुग्ममुच्चर वक्रमुद्धर तन्मुखं बहुशुद्धमानय भं विना नय सन्मुखम् ।
बहुवक्रशुद्धमथापि भं रगणं ततः पदहंस[2]काभिधमेघगर्जसभागतः
।। २०६ ।।

यथा–वनकीरकोकिलकेकिकूजितभावितं जलदानधारणमेघवारणधावितम् ।
अवनीहरित्तृणसंगतेन्द्रवधूयुतं समयं विलोकय मानिनि द्रुतमद्भुतम्
।। २०७ ।।

---

१. भोज सुनि राघवहि द्योस निशिपाल है । अर्थात् भ-ज-स-न-र गणा निशि-
पालमिति छन्दःप्रभाकरः ।

२. मन हंसमिति छन्दः प्रभाकरः । स-ज-ज-भ रगणाः । 'सजजीभरी मनहंसा
वृत्तहि गानकै'

मालिनी—

नगणयुगलमादौ वक्रयुग्मं रयुग्मं तदनु कलय वक्रं तोषयन्भूमिशक्रम् ।
प्रतिचरणनियम्यं वृत्तमेतत्सुरम्यं गुणिगणमुखगेयं मालिनीनाम-
धेयम् ।। २०८ ।।

यथा—यदसिविलसितौघैरासुरं सर्गमस्तं
गतमवनितलान्तर्वीक्ष्य सेन्द्राः सुरौघाः ।
प्रसभमवतरीतुं व्योमतः कामयन्ते
स जयति जयसिंहो मानवंशप्रदीपः ।। २०९ ।।

शरभच्छन्दः—

भुवनगणितलघुमधुरिमकलितं चरमविधृतगुरुसमधिकललितम् ।
तदिह शरभ इति सुविदितरचनं जयति सततसुखसमुदयसचनम्
।। २१० ।।

यथा—सुसमरवसदसि विदलितधिषणं सुसमरवसदसिविदलितधिषणम् ।
अधिनवमहमिह वरभवकन्तं अधिनवमहमिह वरभवकन्तम् ।।२११।।

अथ नराचच्छन्दः—

लघुर्गुरुर्यदि क्रमेण धीयतेऽष्टवारकं
तदेह वृत्तमुत्तमं विभाति चित्तहारकम् ।
नराच इत्यमन्दनामसङ्गतं विराजितं
फणीन्द्रवक्त्रभाषितं कवीन्द्रहृत्सभाजितम् ।। २१२ ।।

यथा—करीन्द्रकुम्भसम्पदामशेषभावतस्करौ
प्रभूतशातकुम्भकुम्भसम्भ्रमैकसुन्दरौ ।
उदारहारभारभातरङ्गिणीविहङ्गमौ
विराजतः समौ तव स्तनौ सदैकसङ्गमौ ।। २१३ ।।

यथा वा—

ललाटवेदिकान्तिकस्थिताक्षिकुण्डविस्फुरत्
प्रचण्डपावकावलीहुतासुरप्रपञ्चकम् ।
समस्तलोकमङ्गलप्रसङ्गदिव्यदीक्षितं
त्रयीनिरूढलक्षणं तमेव देवमाश्रये ।। २१४ ।।

अथ नीलच्छन्दः—

अत्र भपञ्चकमन्तविराजितवक्रयुतं
षोडशवर्णसभाजितसुन्दरशब्दरुतम् ।
तत्कविनायकमोदविधायकमञ्जुतरं
नीलमिति स्फुटनामसुवृत्तमवेहि पदम् ।। २१५ ।।

यथा–रासमनोहरलासवितीर्णविलाससुखं
हासविराजितभासहितोरुविकासमुखम् ।
नीलपयोधरशोलधरं भवकीलहरं
तं कलये हृतशङ्कमहं हृतपङ्कभरम्॥ २१६ ॥

अथ चञ्चला–
वक्रशुद्धवर्णयुग्ममष्टवारमुच्चरन्तु षोडशार्णवृत्तमेतदेवमेवमुद्धरन्तु ।
चञ्चलाभिधानधारि भूरि वित्त मोदकारि नागराजवक्त्रचन्द्रसम्मतं
विशेषहारि ॥ २१७ ॥

यथा–उल्लसद्वसन्तकालवल्लरीवितानितेषु
विस्फुरद्घनान्धकारधोरणीसमावृतेषु ।
तेषु तेषु काननेषु तानि तानि लीलितानि
विस्मृतानि नन्दबाल कुब्जिकामनस्यमानि ॥ २१८ ॥

अथ ब्रह्मरूपकम्–
आदौ त्रिर्वक्रं दत्त्वा वक्रद्वन्द्वान्युक्त्वा पञ्चात-
त्रिर्वक्रं दत्त्वा चित्तं हृत्वा यस्यैकोऽङ्घ्रिः सञ्जातः ।
तच्छन्दोविद्भिश्छन्दो वेद्यं मन्दोहानाम ज्ञेयम्
ब्रह्माख्यं रूपं जाग्रद्रूपं तुष्यद्भूपं विज्ञेयम् ॥ २१९ ॥

यथा–उद्वेल्लद्विद्युद्वल्लीमल्लीभूता सल्लीला
सङ्गच्छद्गङ्गा वीचीरङ्गा मोहध्वान्तप्रोन्मीला ।
मन्दोद्यद्दुष्टश्रेणीनिद्रामुद्रारुद्रारुद्राणी
प्रोद्भूतश्रेयःश्रीनिःश्रेणो श्रेयस्येषा मद्राणी ॥ २२०

यथा वा–
कुत्रासौ भूमिर्भूयोभारा कुत्राऽसाराऽपां धारा
कुत्रैतत्तेजस्तीक्ष्णं भानोः क्वैते वायोर्विस्ताराः ।
क्व श्यामं व्योम भ्रामं भ्रामं कामं क्षामप्रज्ञोऽहम्
श्रीनाथस्याथ स्पृष्टो दृष्टया हृष्टो भिद्यां सम्मोहम् ॥ २२१ ॥

अथ पृथ्वी–
जशुद्धजगुरूत्तरं नगणरद्वयं चेद्भवे-
त्तदा सकलवाग्मिभिर्भृशमभाणि पृथ्वीति तत् ।

विभाति यतिरष्टभिर्नवभिरक्षरैर्मोददा
विमोहितसभासदा समुदयेल्लसद्वृत्तके ॥ २२२ ॥
क्वचित्कनकमालिका क्वचन किङ्किणीजालिका
क्वचिद्रुचिरमम्बरं क्वचन भालरत्नं वरम् ।
क्वचिच्च चिकुरोत्करः क्वचन भाति मुक्तासरः
प्रमथ्य सुरताम्बुधिं कृतवती त्वमेवं विधिम् ॥ २२३ ॥

यथा वा–

ननु व्यरचि सा वधूरिह सुमेधसा वेधसा
वशीकरणवस्तुभिस्तुहिनशीकरक्षालितैः ।
विलोचनसुखावहावयवशालिनी यन्मनो
जहार हृदि सङ्गता सकलमङ्गतापं च मे ॥ २२४ ॥

अथ मालाधरच्छन्दः–

इह रुचिरवृत्तके हृतसभासदश्चित्तके
त्रिलघुमय आदिमो यदि गणो विनिर्मीयते ।
भणत विबुधास्तदा सरसवर्णमुक्ताफलम्
सुखदमतिसुन्दरं सततमत्र मालाधरम् ॥ २२५ ॥

यथा–विरहिहृदि यायिनः स्मरसुकीर्तिसङ्गायिनः
कमलमधुपायिनः सविषबाणसञ्चायिनः ।
सुरभिरथसङ्गिनः सुमणिकिङ्किणीरङ्गिणः
किमपि ददतेऽलयः कुतुकमुल्लसत्केलयः ॥ २२६ ॥

अथ शिखरिणी–

पुरः शुद्धं वक्रं कुरु गुरुलघूनां सुरुचिरम्
चतुष्कं प्रत्येकं यगणनगणावन्तगुरुकौ ।
क्रमादेवं न्यासाऽतिशयसविलासाक्षरपदा
रसै रुद्रैर्युक्ता रचितयतिरुक्ता शिखरिणी ॥ २२७ ॥

यथा–जराजन्मागारं मरणभयभारं विदधतम्
रुजां पारावारं विगतसुखसारं च विरसम् ।
अये वारं वारं कुमतिजनतारञ्जनकरम्
धिगेनं संसारं व्रजपतिकुमारं स्मर मनः ॥ २२८ ॥

यथा वा–

कलाकान्ते याते चरमदिशि जातेन महता
वियोगेन श्यामा मलिनतरधामा समभवत् ।
मुहुर्निद्रामन्दोदयकुमुदसन्दोहकपटा–
न्निमीलन्नेत्रेयं तनुतरतनुत्वं च भजते ।। २२९ ।।

अथ मन्दाक्रान्ता–

वेदा वक्रा नगणसगणौ रद्वयं चापि वक्रं
यस्यामेवं चरणनियमो भोगिराजेन गीतः ।
विश्रामः स्याद्युगरसहयैः सर्वदाऽऽनन्दहेतु-
र्मन्दाक्रान्ता परिलसति सा वृत्तशास्त्रे प्रसिद्धा ।। २३० ।।

यथा–श्रीमद्गोवर्द्धनधरवराधीश धैर्यैकधारिन्
धीरोदात्तध्वनितमुरलीनादमाधुर्यधामन् !
धीमन् धाराधरसम धराधार धूतोद्धुराधे
राधाऽसाधारणरतिनिधे सन्निधेह्यान्तरे नः [ध्वान्तमेतद्धुनीहि]
।। २३१ ।।

....

..............................स्फुरच्छुद्धवक्रं यदा ।
भवति चरणमेतदुच्चैस्तदा भाति वृत्तं बुधा
भुजगनृपतिगीतमुक्तादिहाराख्यमन्तः सुधा ।। २ २ ।।

यथा–जय जय जय राम वेदान्तसिद्धान्तसाराकृते
सुरपतिहितकार्यजातावतारोग्रतेजोधृते !
दशमुखमुखदुष्टरक्षोवरानीकिनीसंहृते
कलय कलय भव्यमस्मादृशे मोहभस्मावृते ।। २३३ ।।

अथ मञ्जीरा–

षड्भिर्वक्रैरग्रे शोभितमुच्चैरेकभकारस्थानं
वक्रद्वन्द्वानन्दिभ्राजितमग्रेऽप्येकभकाराऽऽदानम् ।
अन्ते वेदैर्वक्रै राजितमुद्यद्द्वीपविरामोदारं
मञ्जीराख्यं वृत्तं सम्प्रति जानीताच्छसुवर्णस्फारम् ।। २३४ ।।

यथा–रक्षोवक्षोविक्षोभोचितचञ्चद्बाणविमुञ्चच्चापं
दारं दारं वारं वारमरातिप्राणविसर्पत्तापम् ।
भास्वद्वंशोत्तंसं शंसितमग्रे वेदचतुष्केनालं
कामं कामं रामं नौमि समन्तादद्भुतभूमीपालम् ॥ २३५ ॥

अथ क्रीडाचक्रम्–

भुजङ्गप्रयातं भणैकाङ्घ्रिजातं तदग्रे तदर्द्धं
प्रविन्यस्य कुर्याः समुच्चारमुच्चैः सबुद्धया समृद्धम् ।
तदा वृत्तधाम स्फुटं तस्य नाम प्रकृष्टं गृणीयाः
समाक्रीडचक्रं समुद्भाव्य वक्रं मनांस्यावृणीयाः ॥ २३६ ॥

यथा–कवित्वप्रसारातिपीयूषधारा विनिर्यद्विचारा
समुद्भूतभूयोविकारात्तरुद्राभिसारा [ऽऽत्मधारा] ।
प्रशस्ता प्रकारावलीभिः समाराध्यमन्त्रप्रचारा
समन्तादुदारा महादेवदारा विनोदैकसारा ॥ २३७ ॥

विधेः पार्श्वयाता तथा लोकमाता तुषाराद्रिजाता
गुणौघावदाता यशःपारिजातातिसौरभ्यवाता ।
प्रसर्पत्प्रभातार्कविद्योतपाता वसत्यङ्कजाता-
रुणश्रीसमाताम्रहस्ताम्बुजाता कृतानेकशाता ॥ २३८ ॥

सदैवाऽविगीताश्रया दिव्यगीताख्यशास्त्रेण गीता
मनोदेशनीता तदैव प्रतीता शशिश्रेणिशीता ।
परित्रातभीता मरालीपरीता दृगम्भोजपीता
वशीभूतसीतापतेर्बुद्धयतीता द्विजेन्द्रैरधीता ॥ २३९ ॥

नमन्नाकपालादिदिक्पालबालाशिरोधार्यमाला
महारत्नजालावलीढप्रभालालिताङ्घ्रिप्रबाला ।
समालिप्तकालागुरुर्वैरिकालायिता पीतहाला
जयत्युद्भटालापशाला विशाला महेशी कराला ॥ २४० ॥

अथ चर्चरी–

रान्वितं लघुयुग्ममुच्चरत त्रिवारमुदञ्चितं
प्रान्ततो रगणान्वितं पदमेवमानय सञ्चितम् ।

चर्चरीति मनोहराभिधमद्भुतं समुदाहृतं
वृत्तमेतदहीन्द्रनिर्मितमञ्जसा कविभिः कृतम् ।। २४१ ।।

यथा–शारदापटनारदाकृतिपारदाकरराजितं
क्षीरसागरतीरशोभितहीरसप्रसभाजितम् ।
चन्द्रचन्दनचन्द्रिकाचयचारुचामरभाजितं
सस्तवं सुयशस्तवाऽवनिशस्तसुज्ञसभाजितम् ।। २४२ ।।

अथ शार्दूलविक्रीडितम्–

दत्वादौ मगणं ततः सजगणौ सान्ते ततस्तद्वयं
तस्यान्ते गुरुमेकमुच्चर सखे कृत्वा मतिं निश्चलाम् ।
इत्युच्चैः प्रचरच्चतुश्चरणभाक् सम्भाव्यमानाक्षरं
छन्दः सन्ततसुन्दरं विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ।। २४३ ।।

यथा–हुङ्कारान् वितनोति मुण्डपटली रुण्डावली कूर्दते
शुण्डाः शुण्डिभुशुण्डिखण्डपतितास्तत्राऽस्रकुण्डान्तरे ।
इत्थं विक्रमवक्रखड्गनखरप्रकान्तघोरक्रिय–
स्त्वं राजेन्द्र रणाङ्गणे वितनुषे शार्दूलविक्रीडितम् ।। २४४ ।।

यथा वा–

खेलन्मञ्जुलखञ्जरीटनयना पूर्णेन्दुबिम्बानना
तारामण्डलमण्डनातिविशदज्योत्स्नादुकूलावृता ।
वक्षोजायितचक्रवाकमिथुना चञ्चन्मृणालीभुजा
फुल्लत्कोकनदौघपाणिचरणा भाते शरत्कामिनी ।। २४५ ।।

अथ चन्द्रनामकं वृत्तम्–

नगणलघुयुगलमिति तद्द्विरिह सुजन कुरु
तदनु गुरुनगणयुगमन्तलघुयुगलमुरु ।
वद तदतिरुचिरगति वृत्तमिह सुकविवर
कलय निजमनसि किल चन्द्र इति चतुरनर ।। २४६ ।।

यथा–कुशलकरमुशलधर घूर्णतरनयनवर
दनुजहर मनुजदवदुःखभरहरणकर !
अमलकरकमलवरणीयवरनिकरधर
धरणिधरधरणवर वीरवर मनसि चर ॥ २४७ ॥

अथ धवलच्छन्दः–

सनिगमलघुगणमुपनय कविवर मुखतः
चतुरिह विरचय सुचतुरवर निजसुखतः ।
तदुपरि सगणमुदिततरमिह कुरु सततं
कलय धवलमिति सुविदितमतिगुणविततम् ॥ २४८ ॥

यथा–अमृतभरितनवजलधरमधुरिमधरणं
समुदितमनसिजशतगतरुचिमदहरणम् ।
[प्रमुदितसकलविबुधंहृदि मतिधृतिकरणं]
भज भज गिरिधरमुपनतवुधजनशरणम् ॥ २४९ ॥

अथ शम्भुवृत्तम्–

लघुयुग्मं कारय भूयो धारय वक्रद्वन्द्वं सानन्दं
भगणं विस्तारय वक्रौ धारय भान्ते धेहि स्वच्छन्दम् ।
मुनिवक्राखण्डितमुद्यत्पण्डितराजीमध्ये दानीयं
निजचेतस्यानय वृत्तं मानय नाम्ना शम्भुस्थानीयम् ॥ २५० ॥

यथा–कलकूजितकोकिललोकाकारितहृष्यच्चेतःकन्दर्पं
वनवल्लीपुञ्जितभृङ्गीगुञ्जितनश्यद्धीरासन्दर्पम् ।
सहकारामोदिविसर्पन्मारुतदत्ताकम्पश्रीखण्डं
मधुमेनं मानिनि मुग्धे मानय मानं मुञ्चामुं चण्डम् ॥ २५१ ॥

अथ हरिगीतम्–

लघुयुग्ममुच्चर वक्रमुद्धर शुद्धभाभरतन्मुखं
भगणं वितानय वक्रमानय शुद्धमासय सत्सुखम् ।
भमथो नियोजय गुं प्रयोजय शुद्धतो नय भं च रं
भुजगोदितं हरिगीतमुद्गिर वृत्तमन्तरसुन्दरम् ॥ २५२ ॥

यथा–बहुकामदायक देवनायक मुक्तमाय कलानिधे
गिरिराजधारण जम्भदारणदर्पवारणहृद्विधे ।
जनचित्तरञ्जन दुःखभञ्जन कंसगञ्जन सन्निधे
जय भक्तरक्षणकृद्विचक्षण दिव्यलक्षणवारिधे ।। २५३ ।।

अथ मुण्डकच्छन्दः–

वक्रशुद्धात्मकान्वर्णान् दशवारं समुच्चरन् ।
कुरुष्व मुण्डकाख्यं तच्छन्दः सन्दर्भकोविद ।। २५४ ।।

यथा–शारदाच्छतारकाभिरामरूपराजमान तारहार
विस्फुरद्विलासहासभासमान रासलासकेलिकार ।
मञ्जुलालिपुञ्जगुञ्जमालतीतमालकुञ्जमोदमान
पाहि कृष्णचन्द्र चित्तहारितार(मध्य)मन्द्रवेणुगान ।। २५५ ।।

अथ स्रग्धरा–

पूर्वे स्युर्वेदवक्रास्तदुपरि यगणः शुद्धषट्कं च वक्रो
रद्वन्द्वान्तेऽथ वक्रः पुनरपि चरणानीति चत्वारि यस्याम् ।
मार्तण्डाश्वैर्मुनीन्द्रैः पुनरपि मुनिभिर्यत्र विश्रान्तिरुक्ता
छन्दःसन्दोहकल्पद्रुमकुसुमकृतस्रग्धरा स्रग्धरा सा ।। २५६ ।।

यथा–अद्याभूदुत्तरङ्गो मम हृदि परमानन्दपाथोधिरुच्चैः
स्वान्तध्वान्तौघशान्तौ सपदि दश दिशः सुप्रकाशा ममाद्य ।
सन्तापः संहृतो मे कठिनतरकलिग्रीष्मजन्माऽद्य यस्माद्-
दृष्टः श्रीमत्सवाईजयपुरपृथिवीपालपीयूषरश्मिः ।। २५७ ।।

अथ नरेन्द्रवृत्तम्–

भानु[सु]वक्रशुद्धगणयुगयुतषड्लघुभद्वययुक्तं
सन्ततमन्तवक्रयुगविरचितमेतदतीव निरुक्तम् ।
भोगिनरेन्द्रवक्त्रविधुनिगदितमन्तरमोदनिदानं
वित्त नरेन्द्रवृत्तमिदमनुपममत्र सुधैकसमानम् ।। २५८ ।।

यथा–फुल्लसरोजधूलिभरदृढतरचर्मचमत्कृतिधारी
चञ्चलचञ्चरीकततिलसदसिकम्पनकौतुककारी ।

एष वियोगिलोकभयवितरणसद्गतिधारणधीरः
कामनिदेशवश्य इह विसरति मानिनि मारुतवीरः ॥ २५६ ॥

अथापरहंसीच्छन्दः–

विद्युन्मालापादस्यान्ते विलसिततररविलघुगणयुक्तं
तस्याप्यन्ते नित्यं राजद्गुरुयुगविरचनसुललितमुक्तम् ।
हंसीनामच्छन्दो वेद्यं सकलसुकविजनकृतसुखदानं
दिग्भिर्लोकैर्यत्या रुच्यं निरुपमचतुरिमनिचयनिदानम् ॥ २६० ॥

यथा–उच्चैराशाः फुल्लत्काशाः कलितविषमदलविपिनविकासाः
कञ्जे कञ्जे भृङ्गश्रेण्यः कलितललिततररवधृतपाशाः ।
जाग्रज्ज्योत्स्नाजालज्वाला दिशि दिशि विकलितसविरहबाला
सम्प्रत्येषाऽऽयाता लोके शरदनुपमरुचिकलनविशाला ॥ २६१ ॥

अथ सुन्दरीवृत्तम्–

सगणद्वययुक्तं भगणनिरुक्तं सादनु वक्रयुगाकलितं
सगणत्रयशोभं विरचितलोभं मञ्जुलवर्णतया ललितम् ।
भण सुन्दरवृत्तं मोहितचित्तं पण्डितलोकमनोवलितं
रसपुञ्जसमेतं सम्पदुपेतं पादचतुष्कसदाचलितम् ॥ २६२ ॥

यथा–अतिसुन्दररूपं त्रिभुवनभूपं दत्तभवोदधिसन्तरणं
दशकन्धरकालं समरकरालं जातपुरन्दरसत्करणम् ।
धृतदुर्धरचापं कुशलकलापं सन्ततसत्पथसञ्चरणं
नितरामभिरामं भज भज रामं साधुसमूहसदाशरणम् ॥ २६३ ॥

अथ सवैया—सप्त भगणा गुरुश्चैकोन्ते, द्वौ वा, अष्टौ भगणा एव वा, सगणा एव वा, इति चतुर्द्धा सवैयाच्छन्दः । क्रमेणोदाहरणानि–

पीतदुकूलतडिद्द्युतिवृन्दसुदीपितभक्तमनोगगने
बर्हिणचन्द्रकचारुकिरीटपुरन्दरचापसमुद्वहने ।
वेणुरवामृतगर्जितशालिनि पालितसज्जनचित्तवने
पातकपूरित चातकपोत न यासि कथं नवनीलघने ॥ २६४ ॥

हासविलासविकासवती रुचिरूपलसन्मकरन्दरसाला
मोहितचित्तमधुव्रतराजिसभाजितसन्ततसौरभशाला ।

यौवनरक्तिमचारुपरागधरा परिगुम्फितसद्गुणजाला
भामिनि भाति परं भवती भुवि हेमसरोजमयी नवमाला ।। २६५।।

दानवगञ्जन सज्जनरञ्जन हृद्भयभञ्जन मङ्गलदायक
मानवतीजनमानविमोचन निर्गतशोचन लोचनसायक ।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जकुटीविलसद्वृषभानुसुतागुणगायक
रासविलासकलासमुदञ्चित मामिह पाहि परं व्रजनायक ।।२६६।।
मृदुहासविलासविसृत्वरसौरभलुब्धमधुव्रतसंवलना
धृतकोमलकेलिकलाकुसुमावलिरुच्चकुचद्वयसम्फलना ।
कमनीयलसद्गुणपल्लविता ललिता परितापविनिर्दलना
नवकामनिकुञ्जललामलतेव विभाति विलासवती ललना ।।२६७।।
इमामेव केचिद्दुर्मिलेति सङ्गिरन्ते ।

अथ द्वितीयत्रिभङ्गी–

द्विरुदितवसुलघु चतुरुपचितलघु विरचितभद्विगुवर्णं द्विलवक्रद्वन्द्वसुयुक्तं
तदनु भगणयुतगुरुयुगकृतरुतमुदितमवद्यविमुक्तं फणिराजेनैव निरुक्तम् ।
इदमनुपमगति बुधजनकृतरति शुभयतिदानविचित्रं हृतचित्तं सत्कविवित्तं
धरणिधिषणसम विरचय सुधिषण किमपि मनोहरवृत्तं शुभवाचा वर्णित-
वृत्तम् । ।। २६८ ।।

यथा–

वलितललितगतिचलितकलितसुखजलधरसुन्दरभासं सविलासं कोमलहासं
प्रकटितसुघटनटनपटुनवनटवटतरुसङ्गतरासं कृतलासं केलिनिवासम् ।
अमितमदनमधुरिममदविदलनपदनखरश्मिविकासं सदुपासं पापनिरासं
तमिह कलय मम हृदय भजनरतिकृतमति सङ्गसमासं सुखभासं
मोदितदासम् ।। २६९ ।।

अथ शालूरच्छन्दः–

वक्रद्वयविरचितमुखरुचिपरिचितमथ षडुदितमिति निगमकलं
शालूरमवधिपरसगणमुरगवरवदनकमलगतममलमलम् ।
वृत्तं तदखिलहृदयरुचिरतर(नर)मुचितविरतिभरनिहितबलं
जानीहि विबुधवर नृपतिसदसि चर कलय हृदयहरममृतफलम्
।। २७० ।।

यथा—संसारसरणकरविकलसकलनरनिकरपरमशरण(द)चरणे
गोवर्द्धनगिरिवरधरणविदिततरसुरपतिमदभरपरिहरणे ।
वंशीरवसुमुदितगणशतसमुदितपशुपयुवतिविलसितकरणे
चेतो मम विरचितशममिह निवसतु भगवति भवजलनिधितरणे
॥ २७१ ॥

अथ विशालोपविशालच्छन्दोलक्षणे—

यत्र चरणे यथोचिताऽनियतगुरुलघुशालिनि पूर्वं षोडशवर्णैर्यतिस्ततः पञ्चदशवर्णैस्तद्**विशालाख्यं** छन्दः । पूर्वं पञ्चदशादौ विरामस्ततः षोडशादौ, तत् **खञ्जविशालं** भवति । यत्र पुनः षोडशवर्णैस्तदुत्तरमपि षोडशवर्णैरेव विरामस्तत् **उपविशालं** नामच्छन्दः । इदमपि पूर्ववद्यतिभेदे **खञ्जोपविशालाख्यं** वृत्तं भवति । परं त्विह द्वात्रिंशद्वर्णघटिते उपान्त्यो वर्णः सर्वदा गुरुरेव प्रयोक्तव्योऽन्त्यश्च लघुरेवेत्येकः पक्षः । उभावन्त्योपान्त्यौ लघू एव भवतः, परः पक्षः । उदाहरणम्—

शारदनभःस्थलीव निर्मलनिरभ्रगणा,
राजमानरुच्यरुचितारावृन्दधारिणी
चारुपुरुहूतमणिबद्धसरणी(व),
बहुरत्नरमणीयरूपकौतूहलकारिणी ।
दीपमालिकाया निशि भाति भूरि दीपभृता,
कालिन्दी करालकलिकल्मषविदारिणी
वसुमती केशवविलासवती तनुधृता,
नीलशाटिकेव हेमबिन्दुजालधारिणी ॥ २७२ ॥

वृन्दारण्यचारिणी कदम्बपुष्पभारिणी,
मिलिन्दवृन्दहारिणी सुगन्धिपूरगामिनी
भक्तलोकपालिनी दयालुतानिभालिनी,
रमेशसङ्गलालिनी महाघशैलदामिनी ।
पारिजातपुष्पतारकौघमण्डिता रमेश-
चन्द्रसङ्गिनीव कापि नील[नील]यामिनी
भूरिभङ्गरङ्गिणी तरङ्गिणीषु निस्तुला,
करोतु मे शुभानि सा कलिन्दजेतिनामिनी ॥ २७३ ॥

रासकृतलाससविलासमुखहासरुचि-
दूरीकृतराकारजनीकरसहस्रमान
मधुकरपुञ्जगुञ्जशालिनवकेलिकुञ्ज-
चक्रवर्तिताधरस्वतन्त्रतैकमोदमान ।
चारुवरसानुगिरिवासिवृषभानुजाभि-
लाषकृत[भानुजार्थं]गोचारणवेणुगान
भक्तपरिरक्षणविचक्षणसुलक्षणव-
लक्षगुणलक्ष जय कृष्ण करुणानिधान ॥ २७४ ॥
शैलसुतासानुरागशोभमानवामभाग,
चारुरुचिचन्द्रकलाकलित[किरीटतट]
मौलिमिलन्मन्दाकिनीमञ्जुलतरङ्गरङ्ग-
मङ्गलनिधान पञ्चबाणदमनैकभट ।
भीषणभुजङ्गभोगभासमानमालाधर,
कालानललोचन विशालकलिताशापट
पालय कृपालय निभालय गिरीश देव,
सर्वलोकसंहरणकेलिलसदेकनट ॥ २७५ ॥

वार्युपवारिच्छन्दोलक्षणम्–

कला यत्र तिस्रो दश च दश भूयो दत्ता,
इत्येवं चरणस्थितौ कलिता, गुणवत्ता,
वारिवृत्तमिदमीरितं लसदक्षरजालं,
कलायुगलरहितं भवेदुपवारिरसालम् ॥ २७६ ॥

उभेऽपि यथा–

वन्देहं निगमत्रयीनिश्वासविलासं,
मालापुस्तकशङ्खचिन्मुद्राकरवासं
राकाहिमकरमण्डले कृतवसतिविकासं,
विकचसरोरुहविष्टरे बद्धासनभासम् ।
चरणकमलसदुपासनात्तारितनिजदासं,
विद्यादानविशारदं मृदुमञ्जुलहासं
हेषारवहिंकारधुतदानवहृत्त्रासं,
हयग्रीवममृताकृतिं कृतमोहनिरासम् ॥ २७७ ॥
जय जय जय वागीश हयकन्धर विष्णो
चरणकमलसन्ततनमद्विधिहृद् जिष्णो ।

दुग्धोदधिमध्यस्फुरद्विधुमण्डलवासिन् !
कमलासनशोभिततनो परमविलासिन् !
विशदवेदवाणीसुधा[सं]भृतमुखचन्द्रे !
भक्तमनोरथपूरणानिशनिस्तन्द्रे !
हेषारवनाशितमहादितिजकदम्बे !
भवति निमज्जतु मम हृदयमेकालम्बे ।। २७८ ।।

अथ दण्डकजातय उच्यन्ते–

षड्विंशत्यक्षरादूर्ध्वं समं पादचतुष्टयम् ।
पिपीडिकादीनुत्सृज्य दण्डकः समुदाहृतः ।। २७९ ।।

पिपीडिकादयो ग्रन्थान्तरे पद्यजातिष्वेव परिगणितास्तेन दण्डकलक्षणे तेषां व्यावृत्तिः । दण्डकेष्वादौ चण्डवृष्टिर्नामदण्डकः ।

तल्लक्षणम्–

नगणयुगलशेषतः सप्त रेफास्तदा **चण्डवृष्टिः** प्रसिद्धो भवेद्दण्डकः । प्रतिपदमनुवृद्धरेफाः स्यु**रर्णार्णवव्यालजीमूतलीलाकरोद्दामशङ्खार्कचन्द्रेशभोगीन्द्रपीयूषवाराहवातादयः** । यदि तु लघुपञ्चकाद्यस्तदा **चण्डकीलो** भवेत् । **प्रचितकसमभिधो** नद्वयात्सप्तभिर्यैः ।

नगणयुगलतश्चेन्मस्तदास्ततो या यथेच्छं निबद्धास्तदा **मेघमाला** । नगणयुगलपरस्माद्यथेच्छं निबद्धैर्यकारैरयं **चण्डवेगाभिधानः** । शरमितलघुपूर्वैर्यकारैरयं **सिंहविक्रान्तनामा** । लघुर्गुरुर्लघुर्गुरुर्यदा मुदा निधीयते तदा पुनर्भवत्य**नङ्गशेखरः** यत्र वा निधीयते ।

गुरुर्लघुर्गुरुर्लघुः स उच्यते जनै**रशोकमञ्जरीति** ।

प्रत्येकं मादिभिः कुर्यात्स्वेच्छया हारमेरुभिः
उद्दालः सिंहविक्रीडो मत्तमातङ्गलेखितम् ।
कुसुमस्तबकं दाम वितानं वर्तुलाचलौ
चण्डो ललित इत्येवं दश भेदा उदाहृताः ।।

स्यात्**कामबाणा**भिधो दण्डकोऽयं यथेच्छं निबद्धैस्तसज्यैर्गुरुभ्यां च चित्ताभिहारी । यत्र यथारुचि भा विलसन्ति गुरू च स एष **भुजङ्गविलासः** ।

नगणतश्चेद् गुरुस्तस्य पश्चाद्यदाऽष्टौ तु रेफास्तदा **पन्नगेन्द्रः** कृतः पन्नगैः । प्रतिपदं पन्नगेन्द्रात्पुना रेफवृद्ध्या तु **दम्भोलि-हेलावली-मालती-केलि-कङ्केलि-लीलाविलासादयः**, इति दण्डकलक्षणानि । अथ दिङ्मात्रेणोदाहरणानि । तत्रादौ **चण्डवृष्टि**र्नामदण्डकः–

जय जय जय देव गोवर्द्धनोदारभूमीधराधीशवृन्दाटवीचारिणे
चरणकमलचारुपङ्केरुहान्तर्भ्रमन्मत्तभृङ्गायितश्रीमनोहारिणे ।
सुमधुरमुरलीरवाहूतसप्रेमगोपालिकादृक्चकोरीचमत्कारिणे
नम इह मम तुभ्यमुद्यन्महाघोरकंसासुरप्रेषितद्वेषिसंहारिणे ॥ २८० ॥

अस्मिन् दण्डके प्रतिचरणमेकैकरगणवृद्धौ **अर्ण-अर्णव-व्याड-जीमूतादिनामानो** दण्डका भवन्ति । तत्राष्टभी रगणैरर्णार्णवः । नवभिर्व्याडः । दशभिर्जीमूतः । एवं नामानि भवन्ति ।

यथा—

जय जय जय देव गोवर्द्धनोदारभूमीधराधीशवृन्दाटवीचारिणे धृष्णवे
चरणकमलचारुपङ्केरुहान्तर्भ्रमन्मत्तभृङ्गायितश्रीमनोहारिवर्तिष्णवे ।
सुमधुरमुरलीरवाहूतसप्रेमगोपालिकादृक्चकोरीचमत्कारिणे जिष्णवे
नम इह मम तुभ्यमुद्यन्महाघोरकंसासुरप्रेषितद्वेषिसंहारिणे विष्णवे ॥ २८१ ॥

जय जय जय देव गोवर्द्धनोदारभूमीधराधीशसंशोभिवृन्दाटवीचारिणे धृष्णवे
चरणकमलचारुपङ्केरुहान्तर्भ्रमन्मत्तभृङ्गायितश्रीमनोहारिणे रासवर्तिष्णवे ।
सुमधुरमुरलीरवाहूतसप्रेमसन्दोहगोपालिकादृक्चकोरीचमत्कारिणे जिष्णवे
नम इह मम तुभ्यमुद्यन्महाघोरकंसासुरप्रेषिताशेषविद्वेषिसंहारिणे विष्णवे
॥ २८२ ॥

जय जय जय देव गोवर्द्धनोदारभूमीधरा-
धीशसंशोभिसानन्दवृन्दाटवीचारिणे धृष्णवे ।
चरणकमलचारुपङ्केरुहान्तर्भ्रमन्मत्त-
भृङ्गायितश्रीमनोहारिणे सन्ततं रासवर्तिष्णवे ।
सुमधुरमुरलीरवाहूतसप्रेमसन्दोहसाकूत-
गोपालिकादृक्चकोरीचमत्कारिणे जिष्णवे ।
नम इह मम तुभ्यमुद्यन्महाघोरकंसासुर-
प्रेषिताशेषविद्वेषिभूपालसंहारिणे विष्णवे ॥ २८३ ॥

इत्यादि, एवं प्रतिचरणं शतावधिरगणवृद्धौ **महाचण्डवृष्टिर्नाम** दण्डको भवति ।

यथा श्री रामचन्द्रस्तुतिः—

जय जय जय देव भूमीतलेन्द्र श्रियातन्द्रचन्द्रद्युते रामचन्द्र क्षमापाल शक्रादिदिक्पालतेजःस्फुरच्चण्डकोदण्डदण्डस्फुटोद्गीर्णबाणावलीशीर्ण-

विद्वेषिसङ्घप्रभूतप्रचण्डप्रतापप्रकाशप्रकृष्टप्रसर्पत्प्रभावप्रसारप्रभापूरितक्ष्मातलक्षेम - दाक्षुण्णकौक्षेयकाऽक्षामलक्ष्मीक-सक्षेमसोन्मादमातङ्गविश्राणनोद्दामदीव्यद्गुणग्राम - भूदेवविश्राममभूयस्तरायामधर्मद्रुमाराम हे राम कामाभिरामद्युते ।

जय कविजनगीत सम्वित्तुलातीत नित्यप्रभोदीत शीतद्युतिस्फीत सत्कीर्तिसम्वीत साङ्गस्वराधीत विप्राननोन्नीतमाङ्गल्यवाग्गीत, खड्गस्फुटाघातसद्यःसमुत्खातसर्व-द्विषद्व्रातभूमीतलापातलावण्यसङ्घातदोर्विक्रमत्रातसद्धर्मविख्यातकिञ्चिन्नवप्रातरुद्य-त्पयोजातरोचिष्णवभिख्यातपादद्वयापातनम्रद्विषत्सात दानस्फुटौदार्यसद्विप्रसत्कार्य-सद्वृत्तनिर्धार्यवीर्यश्रियाऽवार्यसौन्दर्यसत्पात्रभूयोलसद्गात्रनित्यद्युते ।

जय गुणमयकाय सर्वाधिकोच्छ्राय दीव्यत्सदध्याय विप्रावलीदाय जाताहिता-ऽपायशातावलीसाय, विस्फूर्जितामन्दसौरभ्यमाकन्द लक्ष्मीलताकन्द पूर्णान्तरानन्द दत्तारिहाक्रन्द, विद्वत्सभोल्लास भूयोरसावास बाणासनोज्जास खड्गाङ्कवत्त्रासवश्य-द्विषद्दास भास्वद्यशोहास बाणासनोत्प्रास विक्रान्तिसोल्लास देव तत्र त्वया कीर्ति-रस्थापि यत्रोल्लसन्तः सुधापूरपूर्णाः स्फुरन्त्युच्चकैस्तुङ्गगङ्गातरङ्गास्तथा राज-हंसावली राजते यत्र कीर्तिस्तथा स्वःपतेर्भ्राजते ।

जय कविजनभाल भूरिस्फुरद्भाग्य भूम्येकसौभाग्य सम्पत्तिसम्भारधौरेयतो-द्दण्डदोर्दण्ड शुण्डासमुच्चण्डभृङ्गावलीगण्ड(शोभैक)वेतण्डविश्राणनाखण्डभूमण्डला-खण्डलोग्रप्रभाजाग्रदत्युग्रहस्ताग्र किं भूयसा विस्तरेण त्वया देव कीर्तिश्रिया विश्वमेतत्समस्तं कृतं निस्तमस्कं तथा कोटिनिर्लाञ्छनेन्दुच्छवीनां घटाभिर्न-सम्भाव्यते तादृशीरतस्त्वं समस्तावनीपालमूर्द्धाग्रमाणिक्य हे राघवेन्द्र प्रभो जीव जीयाश्चिरं देव जीयाश्चिरम् ॥ २८५ ॥

यथा वा श्रीकृष्णचन्द्रमहामहिषी—श्रीयमुनास्तुतिः—

जय जय जय देवि जम्भारिमुख्यामरग्रामजञ्जप्यमानस्वरूपे लसज्जह्नु-कन्यादिकल्लोलिनीवृन्दजाग्रज्जयोत्कर्षजन्यातिहर्षे समुत्फुल्लकुञ्जावलीवृक्षपुञ्जा-टवीमञ्जुगुञ्जारवोन्मत्तभृङ्गीगणाभङ्गसङ्गीतभङ्गीप्रसङ्गप्रसीदत्प्रतीरप्रदेशस्थयक्षे महापातकध्वंसनाबद्धकक्षे जगज्जीवकल्याणदानैकदक्षे सदारक्षिताशेषभक्तैकपक्षे कलिन्दाचलाखण्डगण्डोपलक्षेऽपसंक्षुब्धपाथोघटात्युद्भटेऽन्योन्यसङ्घोच्चलत्तुङ्गभङ्ग-च्छटे निम्नभूमोनमत्पूरपूर्णाऽवटे ध्यानजापादिभिर्नष्टसत्संकटे तिग्मतापत्रयीपाप-भेदोत्कटे हेमहीरावलीवद्धदीव्यत्तटे पूरगस्वर्वधूरोजराजद्घटे लोलवीचीभुजा-सिक्तरोधोऽवटे कञ्जकिञ्जल्करुक्पीतचञ्चत्पटे नित्यशृङ्गारितारण्यशैलाञ्जटे कृष्णकान्ते महानीलरत्नद्युते ।

घनघनवनवृक्षवल्लीशताच्छन्नतीरस्थनीरे सदाधौतगोपालकेलीकुटीरे कलि-ग्रीष्मसन्तापसंहारवीरे हरिप्रेमसन्तानदानैकधीरे महारूपलावण्यलक्ष्मीगभीरे लसत्कूलकूजत्पिकीकेकिकीरे तरङ्गावलीसङ्गमुद्यत्समीरे चलच्चारुवीचीविलो-लत्कुलीरे तटश्रेणिकाबद्ध[माणिक्य]हीरे लसत्कूलसंरूढमन्दारवृक्षप्रसूनौघ-

निष्यन्दिमाध्वीकधारामिलत्सौरभोत्कर्षपाथःप्रवाहे लतामण्डपश्रीसमालोकनिःस्पन्दसानन्दवन्दारुवृन्दारकीवृन्दकेलीकलाशालिकूलावनीशोभिवृन्दाटवीमध्यफुल्लत्कदम्बप्रसूनोत्थपारागचूर्णौघसंछन्नवेगोच्चलच्चारुपुण्योदके हेमहीरावलीबद्धगारुत्मतग्रावरश्मिच्छटासङ्घसन्दिग्धपूरे भवक्लेशपाथोधिसन्तारशूरे स्वजन्मोररीकारसन्तुष्टसूरेऽव नित्याद्भुते ।

अतुलवनवनिन्यमाधुर्यधुर्यस्फुरत्कृष्णकौमारपौगण्डकैशोरकेलीचमत्कारियूथीजपामालिकामालतीमल्लिकामाधुरीकेतकीकर्णिकारादिवल्लीतरुच्छन्नतीराङ्गणे सान्द्रवंशीवटच्छायरुद्धातपस्पर्शशैत्यावहोद्वेल्लदम्भस्तरङ्गे व्रजाधीशलीलावनोपात्तरङ्गे सदाविस्फुरद्गोपिकावृन्दसङ्गे तटारण्यविश्रान्तनानाविहङ्गे कलिक्रूरधिक्कारबद्धाभिषङ्गे महारासकर्तुर्विलासान्तरङ्गे भवत्सिद्धयोगीन्द्रवृन्दप्रसङ्गे निजासङ्गचित्रीकृतस्वच्छगङ्गे सदासम्भवत्पातकव्यूहभङ्गे मरुल्लोलवीचीचमत्कारचङ्गे गभीराम्बुमज्जत्तमस्वर्मतङ्गे लसत्कूलभूलोलखेलत्कुरङ्गे निजाम्भःपृषन्तिव्रजस्पृष्टतीरस्थवामेक्षणाबाहुवल्लीद्वयीकङ्कणीभूतभूयोरदैकैकभित्तेभसम्पादितस्वर्गवासप्रमोदेऽनुकम्पायते ।

अगणितगुणगुम्फिते लोकमातः प्रवाहान्तरामज्जदब्जेक्षणामुग्धधम्मिल्लभारानुबद्धस्फुरच्चामरौघाम्बुसंस्पर्शकालोद्धृताऽशेषतत्सौरभेयीकुले पुण्यपाथोवगाहप्रसङ्गागतानेककर्णाटदेशाङ्गनाकर्णसौवर्णभूषामिलन्मञ्जुमुक्तावलीवारिसङ्गक्षणप्रोद्धृतप्रोल्लसत्ताम्रपर्णीसमुद्रौघसङ्गस्थलीलालुलच्छुक्तिजन्तुव्रजे दीव्यदिभ्याङ्गनाश्रोणिसम्वेष्टिताऽतुच्छपट्टाम्बरक्षालनैकक्षणस्वर्गसम्प्रेषिताशेषतत्कोषकीटे सदावेदवेदान्तविख्यातभास्वद्यशोधोरणीचन्द्रिकावृन्दसम्प्रेषितप्राज्ञचेतश्चकोरे तटद्वन्द्वसंस्थापितस्तम्भसम्बद्धदोलाविलासप्रिये पीतवासःप्रिये शारदाशम्भुशेषादिजेगीयमानप्रसर्पद्गुणग्रामसम्भूषिते कृष्णवंशीरवाऽऽकर्णनोद्भूतहर्षाकुले मत्तमातङ्गधीरेऽम्ब ! भास्वत्सुते सुस्तुते सुस्तुते सुष्ठु तेऽस्मन्नमः सुष्ठु तेऽस्मन्नमः ॥ २८५ ॥

आदौ लघुपञ्चकं ततश्चण्डवृष्टिवदेव रगणानां विन्यासः कार्यः । सोऽयं **चण्डकोलो** नाम दण्डकः ।

यथा—कमलमुखगोपिकामण्डलीवल्लरीकाननप्रस्फुरन्नीलमेघाकृते
रुचिररुचिमज्जताशेषदृग्विद्युदुद्योतजिच्चारुचीरावृते ।
धरणिधरधुर्यधारिन् धराभारहारिन् प्रभो भव्यकारिन् भवप्रोद्धृते
जय दितिजलोकसंहारक ! श्रीपते माधुरीधोरणीधामलीलाकृते ॥ २८६ ॥

अथ नगणद्वयानन्तरं सप्तभिर्यगणैः **प्रचितका**भिधो दण्डकः ।

स यथा—जय जय जय समन्तादुदञ्चद्दिगन्ताचितध्वान्तहारिप्रकाशैकराशे
प्रतिदिनमुषसि भूयो भवद्भूरिशक्ते सरोजावलीवक्त्रमुद्राविनाशे ।

प्रसृमररुचिविसर्पत्सहस्रातिसख्यांङ्शुमालिन् महाकाशमध्यावकाशे
ग्रहपरिवृढ विवस्वन् सदा मे शुभं देहि भानो समुद्यत्कृपावारिराशे ।।२८७।।

अथ नगणद्वयानन्तरं मगणं निधाय यथेच्छं यगणाश्चेद्विधीयन्ते तदैवंविधचतुश्चरणनिबद्धो **मेघमालाख्यो** दण्डकः ।

यथा–

नवजलधरजालश्रीरसौ नन्दबालः सदाऽऽ-
लापशाली किशोराकृतिः सुन्दरेन्दीवराक्षः
विषमविरहबाधाहृत् समुद्भूतराधारता-
सक्तचगाधातिकेलीकलाधारिचुञ्चूकटाक्षः ।
नवमधुरिमभाजा श्रीलगोपीसमाजामिता-
नन्दकन्देन नन्देक्षणामन्दवात्सल्यदेन
स्मरशतजयिभासा स धृतो येन गोवर्द्धनाद्रिः
कराग्रे गवां पालकः पातु लम्बालकस्त्वाम् ।।

अथ नगणद्वयानन्तरं यथेच्छं यगणाश्चेद्विधीयन्ते तदैवंविधचतुश्चरणनिबद्धश्**चण्डवेगा**भिधानो दण्डकः ।

यथा–

जय जय जय विवस्वत्कुलालङ्क्रियानीलरत्नप्रभानिर्जितप्रावृषेण्याभ्रकान्ते
पदनखरुचिचमत्कारिचन्द्रावलीचन्द्रिकौघप्रमृष्टस्वकीयान्तरध्वान्ततान्ते ।
अभिरणमहि समस्तत्रिलोकीमनःकण्टकोद्यद्दशग्रीवसम्पातसञ्जातशान्ते
परमपुरुष सदासच्चिदानन्द पूर्णावतार प्रभो राम पायात्तमां नाम माऽन्ते
।। २८८ ।।

अस्यैवादौ लघुपञ्चकं चेद्विधीयते तदा **सिंहविक्रान्त**नामा दण्डकः ।

यथा–

जय जयसि विवस्वत्कुलालङ्क्रियानीलरत्नप्रभानिर्जितप्रावृषेण्याभ्रकान्ते
चरणनखचमत्कारिचन्द्रावलीचन्द्रिकौघप्रचारोद्धृतस्वान्तगध्वान्ततान्ते ।
अधिधरणि समस्तत्रिलोकीमनःकण्टकोद्यद्दशग्रीवसम्पातसञ्जातशान्ते
परमपुरुष सदासच्चिदानन्द पूर्णावतार प्रभो राम पायात्तमां नाम माऽन्ते
।। २८९ ।।

अथ लघुर्गुरुर्लघुर्गुरुरित्येवं क्रमेण प्रतिचरणं वर्णाश्चेन्निधीयन्ते तदा**ऽनङ्गशेखरो** नाम दण्डकः ।

यथा–त्रिलोकलोकशोकहारि पातकप्रमोककारि,
कोकलोककेलिधारि कीरपूरमण्डिता
समन्ततःप्रमोदलक्ष सम्पदेकदानदक्ष-
शुद्धकृष्णभक्तिपक्षपालनैकपण्डिता ।
सराधिकस्मराधिकव्रजेशसङ्गसाभिलाष-
गोकुलाबलाविलासलासभूरिखण्डिता
कलावती कृपावती कलिन्दजा करोतु शं,
करालकल्मषोच्चलच्चमूषु वेगचण्डिता ।। २९० ।।

अथ गुरुर्लघुर्गुरुर्लघुरित्येवं क्रमेण प्रतिचरणनिबद्धवर्णोऽ**शोकमञ्जरी** नाम दण्डकः ।

स यथा–साभिलाषगोपदारलोचनैकमोदभार,
माधुरीविसारसार रूपराशिराजमान
संविधूतकोटिकाम सौभगप्रकामनाम,
सन्तताभिरामधाम धोरणीकलानिधान ।
दानवौघजातघात भक्तलोकपारिजात,
दत्तकोटिसङ्ख्यशात विस्फुरत्सदावदान
राधिकारतैकतृष्ण पाहि पाहि कृष्ण कृष्ण,
विष्णवे नमोस्तु ते प्रसिद्धपुण्यकीर्तिगान ।। २९१ ।।

अथ प्रत्येकं मयरसनजभनगुरुलघुरुद्दालकादयो दश दण्डकभेदा भवन्ति । तत्र मगणैरु**द्दालको** नाम दण्डकः ।

स यथा–

गोपीनामत्यन्तं मूर्तोऽसावानन्दः संलग्नश्रीचक्षुः साफल्यप्राग्भारः
सम्पन्नं यद्भूमेरुद्भूतं सौभाग्यं सौदार्यं गाम्भीर्यं सौन्दर्यं सौशील्यं
सौरस्यं सौरभ्यं सौलभ्यं चात्यर्थं तेनैव न्यस्ताः सद्धर्मा राजन्ते ।
रागालीसङ्गच्छद्वेणूद्यन्निर्घोषैर्वक्त्रेन्दुप्रोदञ्चत्पीयूषस्रोतोभिः
स्वच्छन्दं लोकानामानन्दं तन्वानो राधाहृद्बाधाहृत्साधूनामाधारः
प्राधान्येनाधार्योऽगाधार्तिस्वीयानामेकाप्तः श्रीकृष्णः कल्याणं देयान्मे
।। २९२ ।।

अथ यगणैः **सिंहविक्रीडो** नाम दण्डकः ।

स यथा–स्तुमः कोमलालापपीयूषधारासदामोदिताशेषगोपीकलापं
समुत्तुङ्गभावाद्भुतभ्रूविलासक्षणे नर्तिताखण्डकन्दर्पचापम् ।

स्फुरत्पत्रगाऽखर्वभाशर्वरीशप्रभागर्वनिर्वासनोदञ्चदास्यं
कलाकोटिलावण्यलक्ष्मीललामप्रकामप्रसर्पत्कटाक्षेषुलास्यम् ॥
व्रजस्त्रीचकोरीचयाचान्तचञ्चच्चमत्कारकृच्चन्द्रिकाचारुहास्यं
भवोद्भूतभूयोभयाभावहेतो सदान्तःसमुद्यत्पदाम्भोजदास्यम् ।
तपोदानदीक्षादि हित्वा समस्तं मनःप्रेममात्रेण धन्यैरुपास्यं
[स्वभावोदयतमेकं] भवद्वृत्तिरोधो निरोधो निरोधस्फुटानन्यसामान्य-
चैतन्यभास्यम् ॥ २९३ ॥

एवं रगणैर्मत्तमातङ्गखेलिताख्यो दण्डकः ।

स यथा—प्रोल्लसन्मल्लिकावल्लरीवृन्दसत्पुष्पसौरभ्यसा-
नन्दभृङ्गावलीतारविस्फारझङ्कारजाग्रत्स्मरे
चूतनूत्नाङ्कुरास्वादमाधुर्यभृत्कोमलालापकृ-
त्कोकिलाकाकलीकेलिकोलाहलाक्रान्तकुञ्जान्तरे ।
भानुजातीरभूरासलासस्थलीनृत्यकृत्कृत्स्नगो-
पालिकामण्डलीविस्फुरत्स्वर्णमाणिक्यमालाधरे
सुन्दरानन्दकन्देन्दिरामन्दिरे याति निर्मङ्क्तुम-
ह्नाय मन्मानसं चारुवृन्दावने मोदवृन्दाकरे ॥ २९४ ॥

एवमेव सगणैः **कुसुमस्तबकाख्यो** दण्डको भवति ।

स यथा—विलसत्सुषमाकमनीयतमा रजनीशसमा-
ऽऽननबिम्बरमापरिधूतनिकुञ्जनिकेततमा
भुवनत्रितयी भरितप्रमदा वलिहारलता-
तरलामितभापरिषद्रसभावमयी परमा ।
महनीयमहोमहिमाकलिता ललितालुलिता-
दिसखीवलिताऽखिलमानवतीजनमानगमा
सखि भासि विभासितकेलिकलाकुलकामबला,
वृषभानुसुते हरिमेघगता तडिदोघसमा ॥ २९५ ॥

एवमेव तगणैर्दामाख्यो दण्डकः ।

स यथा—यः कौशिकादेशतो लब्धवानेव दिव्यानि तेजो-
मयान्यद्भुतास्त्राणि भूमीभरोद्भूतरक्षोविरामाय
यश्चण्डकोदण्डदण्डं निजोद्दण्डदोर्दण्डगं क्रीडया
खण्डयामास सीतारमासङ्गमानन्दकामाय ।

तस्मै नमः सच्चिदानन्दरूपाय लोकत्रयीभव्य-
साकेतभूपाय सौन्दर्यशोभापराभूतकामाय
धाराधरस्तोमधामाभिरामाय योगीन्द्रसन्दोह-
चेतोललामाय लीलाकृते राघवेन्द्राय रामाय ॥ २९६ ॥

एवमेव जगणैर्वितानाख्यो दण्डकः ।

स यथा—जयामितसेवक कामितदान विनिर्धुतदेव महीरुहमान-
जगत्त्रयपावनसद्गुणगान सदाचरितश्रुतिधर्मविधान,
धुरन्धरधीर, दयैकनिधान मुनीन्द्रमनोगतमोदनिदान ।
जयाङ्घ्रिसरोजनमत्पवमानतनूजनिवेदितसिद्धसमान
मनोरथबद्धविनोदवितान जयातुलपुष्पकनामविमान
विराजिकृतस्वपुरप्रतियान द्दशं मयि दासजनेऽपि बधान ॥२९७॥

एवमेव भगणैर्वर्तुलाख्यो दण्डकः ।

स यथा—सेवकरक्षणकर्मविचक्षण भूभरतक्षण
भावितततक्षण विक्रमलक्षण लक्षनिकेतन
शारदचन्द्रजयैकविशारदवक्त्रविभैकवि-
धूततमोभररूपजगर्वचलज्झषकेतन ।
वामलसन्मिथिलेशसुतावरकल्पलतावलि-
तामरभूरुहसाधुजनावनभूरिकृपामय
भव्यदभानुकुलामलभूषण नाशितसत्रिशि-
रःखरदूषण राम पते जगदेकगते जय ॥ २९८ ॥

एवमेव नगणैरचलो नाम दण्डकः ।

स यथा—रजनिरमणरुचिरवदन सकलभुवन-
कुशलसदन सुजनशरणचरणकमल
क्वचन कलितभुजगशयन करुणलुलित-
नलिननयन भजनदलितसकलशमल ।
क्वचन धरणिधरणचतुर निगमनिवह-
विलसदवन तुरगवदन महिमनिलय
सभ्रचलितदनुजदितिज विबुधमनुज-
सुखदचरित जयसि जगति शमिह कलय ॥ २९९ ॥

एवमेवान्येऽपि दण्डकभेदा यथालक्षणं स्वमत्योहनीयाः । पूर्वं नगणस्तत एको गुरुस्ततो रगण इत्येवं सप्ताक्षरो गणः स्वेच्छया सप्ताष्टनवादिक्रमेण मुहुर्निधीयते तदैवंविधचतुश्चरणशाली विच्छित्तिविशेषवान् **मकरालयो** नाम दण्डकः । **स यथा–**

सकलवित्ताभिराम कमलानित्यधाम प्रबलापत्प्रशाममुदयत्प्रेमकाम सततोन्मत्तवाममतुलोद्दामधाम कलिताशेषकामविबुधेन्द्रादिधाम जय विख्यातनाम जनचेतोभिराममतिफुल्लत्तमालतरुहिन्तालजालकलगुञ्जालिमालघनकुञ्जातिशालि विकचाम्भोजवृन्दपरिगुञ्जन्मिलिन्दबहुलानन्दकन्द कलवल्लीलताविविधमल्लीशताविरतसङ्गोद्धतानिलगताशेषतापकलकोकिलकलापपरपुष्टप्रलापयुतमंहोदुरापतरमत्युग्रपापचयविच्छेददक्षमतिपुण्यैः समक्षमखिलक्षेमरक्षहृदयक्षोभदक्षमवनीदुःखभक्षमवनीयात्तपक्षमखिलक्ष्माविलक्षणमथोदञ्चदक्षमखिलोद्धारकारिसुमनःस्वान्तहारि हृदि मुहुश्चन्नगारिविचरत्पन्नगारिकृतसंसारपारमखिलक्षोणिसारमुदितातुल्यतारपरपूर्णावतारजनमोक्षप्रकारपशुपालीविहारभरनित्यप्रसारगतभूयोविकारमतिलावण्यभारधृतपुण्यप्रसारमनुजानामगारमुदितानन्दधारमथ शृङ्गारहारलतिकालग्नतारतरनिध्वानकामदत्तालिभारकपटोद्भूतभारनृपवैदूर्यहारमरुणापत्यपातबहुसंघर्षजाततुहिनस्पर्शवातसततस्पर्शजातहरिसम्भोगजातनिखिलस्वेदपातमथवर्षाविनोल्लसितहर्षावलीविवशतर्षाकुलप्रमदनृत्यन्मयूरनिनदासक्तदूरतरविश्रामशूरतरुणीकर्णपूरनधिकानन्दघूर्णदलिपुञ्जप्रपूर्णमनिलस्पर्शतूर्णततपारागचूर्णभृतपुत्रादिहंसकुलसङ्गीतकंसहरकीर्तिप्रशंसनसमुद्यच्चिदं(श)भृतभूयोरिरंसपशुपालावतंसमतिसौगन्ध्यपुष्टलवलिश्रेणिजुष्टनवमाकन्दतुष्टपरपुष्टालिघुष्टरुचिरं नित्यहृष्टतरपञ्चेषुदुष्टहृदयाशेषलोकमनिशोन्नादिकोककृतदुःखप्रमोकहृदयाशेषशोकभरसंहारहेतुरथ संसारसेतुररविन्दावलीमुखितवृन्दारकान्तरमिलिन्दालयं मनुजवृन्दाऽवनं जयति वृन्दावनम् ।

जयति तत्रालिवृन्दविहितत्राणपुष्पफलपत्रालयेऽखिलखलत्रासनो निजगुणत्राकृतव्रजजनत्रायको विहितसत्रावलिद्विजगणत्राऽबलाहृतसुपत्रादिमिश्रसदमत्रालिसम्भरितभूयःकरम्भभुजिमादौपलम्भउदयद्दर्पजम्भरिपुनिःशेषदम्भमदसंरम्भहारिभुजगेशानुकारि वरशैलेन्द्रहारिबहुकामाभिसारि तरुणीचित्तहारि परमानन्दकारि भुजविक्रान्तिवारितमहाकालवारिदसमूहप्रसारिमुशलाकारवारिभरधारासहस्रभयभारावसन्ननिरगारात्मलोककृतहारावहृत्पशुपदारावलन्नयनताराभ उल्लसितहारावली ललितताराबली वलितधाराधरप्रतिममाराशुगोद्धुरविहारार्थसङ्गतरमाराधितोपचितवक्षा हृताखिलविपक्षान्वयो विबुधपक्षावनप्रबलकक्षाप्रबन्धसुविदक्षाशयः स्वजनरक्षाकरः कलितयक्षाभिभूतिलसदक्षामविक्रमवलक्षाकृतिर्जितकुलक्षाढचरोषनिवहक्षारचित्तबहुरक्षाभवत्कलिमलक्षालनामृतसकक्षाद्भुतस्फुरदन्तालयः पर-

दिगन्तागताघबकहन्ताधिमेदिनि समन्तादुरत्रिगुणसन्तानभृत्कुवनसन्तापहृत्स्वजन-मन्तारणोल्लसदनन्तारशब्दितमिदंतास्वरूपमधिगन्ताखिलेश्वरनियन्ता प्रमोदवनरन्ता स्वकीयविपदन्ताभिकः श्रुतदुरन्तागमः सदनुमन्ता स्वधर्मशततन्तावभीक्ष्णमथ गन्ताऽखिलोपनिषदन्तावनौ विपुलदन्तावलप्रचुरदन्तान्वितान् समभिगन्ता रिपून्समभिहन्ता चिराद्विपुलमञ्चोत्तमादुदितचञ्चोपमं निखिलपञ्चोत्तमप्रकरसञ्चोष्यमाण(परि)-सञ्चोरितप्रगुणपण्डाधरौघहृदखण्डावनीवलयचण्डासुरप्रकरदण्डावहोरुभुजदण्डाहित त्रिदशखण्डाभयः परवितण्डाहरःसुभगगण्डालुलद्वदनमण्डालकःप्रगुणगोपालकःपशुपसद्बालकः सुरवधूचालकः खलचमूकालकः. स्वजनदृग्लालकः खरवधोत्तालकः परमरम्यालकः परिलसन्नालकस्थमणिभाजालकः सकलशोभालकः स्फुटयशोभालकः सुखितदिक्पालकः परिहृतज्वालकः स्वजनसम्भालकः ।

जयति तस्याखिलव्रततपस्यासुरौघवरिवस्या शिवाशिवनमस्याफलं व्रजजनस्यातिमञ्जुहृदयस्याधिदैवमिव धीरामिलज्जलगभीराभिराम दिनहीरात्मजावितततीरावनिस्थयुवतीरासमण्डलगनीराजमाननखहीरामलच्छविमती, राजमानदलिताम्भोजभाननवबन्धूकमानहरसेवाविधानकलितानन्ददानपरमश्रीनिदाननवसम्प - न्निधानचरणासज्ज्यमानतनुशाटीपिधानगतरम्भासमानलसदूरुप्रभाऽनवरतोत्साहृदासुरसनाभिह्लदा त्रिवलिसङ्गा विराजिविलसद्रोमराजिरणुमात्रोदरी सुरतवाञ्छा(क)-हरी मृगमदक्षोदलिप्ततरवक्षोजकान्तिहृदयक्षोभदा मदनरक्षोपमाननविलक्षोदजाविशदपक्षोदचारि विहगक्षोभकृद्गतिसुलक्षोपमाजितमदक्षोरितद्विपविपक्षोदया पतिदिदृक्षोदयन्निजविवक्षोढगाढभुजकक्षोर आहितसदक्षोभ्यकञ्चुकसमक्षोप्तमञ्जुमणिलक्षोच्चलत्किरणकक्षोदयास्तशितिपक्षोद्गमा लसदसामान्यरूपभरधामातिशोभितनुधामाऽमला विजितकामाऽम्बलाशतमहामाधुरीभरनिकामाद्भुता प्रणयिकामावहस्मितसुधामादिनी निखिलरामावलीसकलयामादनप्रगुणनामाञ्चिता विहितदामाच्छभाभ्रमितसामादिकश्रुतिगिरामापिता किमपिगामाप्य भक्तजनतामानदाप्रणयकामातुरप्रसितरामानुजप्रहितसामार्थसङ्गतसुदामाभिधानसखितामाद्युदन्तकथना - माननीतदिनयामाकुला क्वचन या माधवोक्तपररामाभ्रमप्रभवतामाभिधा श्रुतिमहामानिनी विधिकृतामातमोभरविरामायतद्युतिललामाद्भुताखिलकलामालिनी तरणिभासा भवन्नवविकासाभितःस्फुरितकासारपुष्पसुषमासारहारिमुखहासान्विता कलितरासावली ललितलासा मनोहरविलासातिशोभिनिजवासाऽजिराऽमितसुत्रासावहावयवभासादितोरुमधुमासार्हसद्घुसृणवासा हरेरियमसाधारणस्मरजबाधाहराऽखिलसमाधानकृद् व्रजजनाधारभूतसदगाधातिमञ्जुलगुणाधारिणी नयननाधाऽननातिसुखसाधाऽऽयुधाब्धिरिव राधाभिधा ।

जयति सातद्वयीविहृतिरातन्वती विविधसातव्रजं तरणिजाऽतवर्यतीरसुष-

मातन्यमानमुदि कामावनेऽखिलजगत्पावने सततमानन्दने मधुरतानन्दने मितलसच्चन्दने मुदितसङ्क्रन्दने सुरसभावन्दने च्छविभरच्छन्दने विरहजाक्रन्दने नयननिष्पन्दने मधुभरस्यन्दने भृतमनोभन्दने तरुलतालीघने निभृतमस्मिन् वने क्वचन तालालिषु प्रमदशालायमानपशुपालाबलाशतसमालापभू रसिकनालाभदा क्वचन कालाभ्रमेचकतमालावलीषु वहुतालाभिराम—सुविशालाननस्वररसालाच्छगानरसहालामदोल्ललितमाला भवत्तरणिजालावघूतभुजनालाभिरुच्चनरपालान्विता क्वचन बालातपारुणितपालाशकाननरसालावली ।

सरलसालाटवी विटपकालापसङ्गमसदालाल्यमानलतिकालाघवा कवनकालातिमत्तरतिपालाशुगस्खलितनालाबलाकनकमालासमूहसुनिभालाकृतिः क्वचन कालागरुद्रवकृतालेपना क्वचन कालासहस्मरभवद्वेपना क्वचन कृष्णास्यपङ्कजसतृष्णाशयप्रणयनिष्णातगोपललनालीलना क्वचन दोषाभिसारगतिसंशीलना क्वचन केलीकलाकुलकृतोन्मीलना क्वचन भूयोवियोगभवरुक्कीलना क्वचन पम्पासरःसलिलझम्पाप्रवीणमृदुसंपातिफुल्लनवचम्पाटवी कलितकम्पाऽनिलोद्यदनुकम्पासमुज्झितसुलंपाकपञ्चशरसम्पालनाललितशम्पासुसङ्गतपयोदावलीप्रगतमोदाकुला प्रिययशोदातनूजपरमोदारकेलिसुविनोदावहा दितिजतोदातुरत्रिदशरोदापहा विगलितोदाहृतिः कथितगोदामबन्धनकथोदासितव्रजजनोदारधीरमितशोभानिधिः कलितलोभा दृशामुरुमनोभाविताच्छसुमनो भामिनीनयनवित्ताहृतिः सकलहृत्तापनाशनसरित्ताद्दशात्मजनवित्तापितामहिमवित्तारणाधिकपवित्रा कलिप्रभववित्रासहृत्परममित्राद्‌तोरुगुणचित्रा मनोनटचरित्राश्रयाद्भुतवरत्रानुरक्तहृदयप्रेमभक्तजननित्याश्रया कुशलकृत्यक्षमा मधुरनृत्यक्रमा कलितभूरिभ्रमा निशि शरीरश्रमापनयदोर्विश्रमावहनिजांसावलम्बकरगोपीकदम्बसुखसम्पत्पदम् ।। ६६

यथा वा विच्छित्तिविशेषशालिदण्डकान्तरं वृन्दारकेशेत्यादि ।

समाप्तः तृतीयो गुम्फः

राधाकृष्णो जयति

राजस्थान सरकार

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जोधपुर

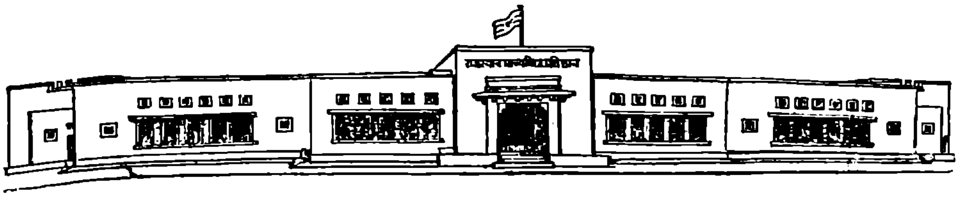

सूची-पत्र

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

अगस्त, १९६३ ई०

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक–पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रकाशित ग्रन्थ

१. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. प्रमाणमंजरी, तार्किकचूडामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर । मूल्य–६.००

२. यन्त्रराजरचना, महाराजा-सवाईजयसिंह-कारित । सम्पादक–स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर । मूल्य–१.७५

३. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदनओझा-प्रणीत, भाग १, सम्पादक–म० म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी । मूल्य–१०.७५

४. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदन ओझा प्रणीत, भाग २, मूलमात्रम् सम्पादक–पं० श्रीप्रद्युम्न ओझा । मूल्य–४.००

५. तर्कसंग्रह, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक–डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम.ए., पी-एच. डी., मूल्य–३.००

६. कारकसंबंधोद्योत, पं० रभसनन्दीकृत, सम्पादक–डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी. । मूल्य–१.७५

७. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्टकृत, सम्पादक–स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य । मूल्य–२.००

८. शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच.डी. । मूल्य–२.००

९. कृष्णगीति, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् । मूल्य–१.७५

१०. नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् । मूल्य–१.७५

११. शृङ्गारहारावली, श्रीहर्षकवि-रचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच.डी., डी.लिट् । मूल्य–२.७५

१२. राजविनोदमहाकाव्य, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य–२.२५

१३. चक्रपाणिविजय महाकाव्य, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक–पं० श्रीकेशवराम काशीराम शास्त्री । मूल्य–३.५०

१४. नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक–प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् । मूल्य–३.७५

१५. उक्तिरत्नाकर, साधसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य–४.७५

१६. दुर्गापुष्पाञ्जलि, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक–पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य । मूल्य–४.२५

१७. कर्णकुतूहल, महाकवि भोलानाथविरचित, इन्हीं कविवर की अपर संस्कृत कृति श्रीकृष्णलीलामृत सहित, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., मूल्य–१.५०

१८. ईश्वरविलासमहाकाव्य, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर । स्व. पी. के. गोडे द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तावना सहित । मूल्य–११.५०

१९. रसदीर्घिका, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. मूल्य–२.००

२०. पद्यमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य । मूल्य–४.००

२१ काव्यप्रकाशसंकेत भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०–श्रीरसिकलाल छो० पारीख, अंग्रेजी में विस्तृत प्रस्तावना एवं परिशिष्ट सहित मूल्य–१२.००

२२. काव्यप्रकाशसंकेत, भाग २ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०–श्रीरसिकलाल छो० पारीख,

मूल्य—८.२५

२३. **वस्तुरत्नकोष**, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० प्रियबाला शाह । मूल्य—४-००

२४. **दशकण्ठवधम्**, पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पा०—पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी । मूल्य—४.००

२५. **श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्र**, सभाष्य, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत भाष्य-सहित पूजापञ्चाङ्गादिसंवलित । सम्पा०—पं. श्रीगोपालनारायण बहुरा । मूल्य—३.७५

२६. **रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रन्थ-संग्रह**, ठक्कुर फेरू विरचित, संशोधक—पद्मश्री मुनि जिन-विजय, पुरातत्त्वाचार्य । मूल्य—६.२५

२७. **स्वयंभूछन्द**, महाकवि स्वयंभूकृत, सम्पा० प्रो० एच. डी. वेलणकर । विस्तृत भूमिका (अंग्रेजी में) एवं परिशिष्टादि सहित मूल्य—७.७५

२८. **वृत्तजातिसमुच्चय** कवि विरहाङ्करचित, ,, ,, ,, मूल्य—५.२५

२९. **कविदर्पण**, अज्ञातकर्तृक, ,, ,, ,, मूल्य—६.००

३०. **कर्णामृतप्रपा**, भट्टसोमेश्वरकृत सम्पा०—पद्मश्री मुनि जिनविजय । मूल्य—२.२५

३१. **त्रिपुराभारती लघुस्तव**, लघुपण्डितविरचित, सम्पा० ,, मूल्य—३.२५

३२. **पदार्थरत्नमञ्जूषा**, पं० कृष्णमिश्रविरचिता, सम्पा० ,, मूल्य—३.७५

३३. **वृत्तमुक्तावली**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट कृत; सं० पं० भट्टश्रीमथुरानाथ शास्त्री । मूल्य—३.७५

२. राजस्थानी और हिन्दी

३४. **कान्हडदेप्रबन्ध**, महाकवि पद्मनाभविरचित, सम्पा०—प्रो० के.बी. व्यास, एम. ए.। मूल्य—१२.२५

३५. **क्यामखां-रासा**, कविवर जान-रचित, सम्पा०—डॉ. दशरथ शर्मा और श्रीअगरचन्द नाहटा । मूल्य—४.७५

३६. **लावा-रासा**, चारण कविया गोपालदानविरचित, सम्पा०—श्रीमहतावचन्द खारैड़ । मूल्य—३.७५

३७. **बांकीदासरी ख्यात**, कविराजा बांकीदासरचित, सम्पा०—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम. ए., विद्यामहोदधि । मूल्य—५.५०

३८. **राजस्थानी साहित्यसंग्रह**, भाग १, सम्पा०—श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम.ए. । मूल्य—२.२५

३९ **राजस्थानी साहित्यसंग्रह**, भाग २, सम्पा०—श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए., साहित्यरत्न । मूल्य—२.७५

४०. **कवीन्द्र कल्पलता**, कवीन्द्राचार्य सरस्वतीविरचित, सम्पा०—श्रीमती रानी लक्ष्मी-कुमारी चूंडावत । मूल्य—२.००

४१. **जुगलविलास**, महाराज पृथ्वीसिंहकृत, सम्पा०—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य—१.७५

४२. **भगतमाळ**, ब्रह्मदासजी चारण कृत, सम्पा०—श्री उदैराजजी उज्ज्वल । मूल्य—१.७५

४३. **राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरके हस्तलिखित ग्रंथोंकी सूची, भाग १ ।** मूल्य—७.५०

४४. **राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठानके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची, भाग २ ।** मूल्य—१२.००

४५ **मुंहता नैणसीरी ख्यात**, भाग १, मुंहता नैणसीकृत, सम्पा०—श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया । मूल्य—८.५०

४६. ,, ,, ,, ,, २, ,, ,, ,, मूल्य—६.५०

४७. **रघुवरजसप्रकास**, किसनाजी आढाकृत, सम्पा०—श्री सीताराम लाळस । मूल्य—८.२५

४८. **राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग १** सं० पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय । मूल्य—४.५०

४९. **राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २**—सम्पा०—श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया एम.ए., साहित्यरत्न । मूल्य—२.७५

५०. **वीरवांण**, ढाढी बादरकृत, सम्पा०—श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य—४.५०

५१. **स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण-ग्रन्थ-संग्रह-सूची**, सम्पा०—श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए. और श्रीलक्ष्मीनारायणगोस्वामी दीक्षित । मूल्य—६.२५

५२. **सूरजप्रकास, भाग १**—कविया करणीदानजी-कृत, सम्पा०—श्री सीताराम लाळस। मूल्य—८.००

५३. ,, ,, २ ,, ,, ,, ,, मूल्य—६.५०

५४. नेहतरंग, रावराजा बुधसिंहकृत—सम्पा०-श्रीरामप्रसाद दाधीच, एम.ए. मूल्य–४.००
५५. मत्स्यप्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन, प्रो. मोतीलाल गुप्त,एम.ए.,पी-एच.डी. मूल्य–७.००
५६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०–श्री एम. सी. मोदी। मूल्य–५.५०
५७. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज–एस. आर. भाण्डारकर, हिन्दी-अनुवादक श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी, एम. ए., साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ मूल्य–३.००
५८. समदर्शी आचार्य हरिभद्र, श्रीसुखलालजी सिंघवी, मूल्य ३.००

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत

१. शकुनप्रदीप, लावण्यशर्मरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
२. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
३. नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०-डॉ० बी.जे. सांडेसरा।
४. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०–श्री बी. डी. दोशी।
५. प्राकृतानन्द, रघुनाथकवि-रचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
६. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथरचित, सम्पा०–श्री एम. एन. गोरे।
७. एकाक्षर नाममाला—सम्पा०–मुनि श्रीरमणिकविजय।
८. नृत्यरत्नकोश, भाग २, महाराणा कुंभकर्णप्रणीत, सम्पा०–श्री आर. सी. पारिख और डॉ. प्रियबाला शाह।
९. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पा०–डॉ. दशरथ शर्मा।
१०. हमीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
११. स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पा०–डॉ० आत्माराम जाजोदिया।
१२. वासवदत्ता, सुबन्धुकृत, सम्पा०–डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल।
१३. आगमरहस्य, स्व० पं० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०–प्रो० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी।

राजस्थानी और हिन्दी

१४. मुंहता नेणसीरी ख्यात, भाग ३, मुंहता नैणसीकृत, सम्पा०–श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया।
१५. गोरा बादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतनकृत सम्पा०–श्रीउदयसिंह भटनागर, एम.ए.
१६. राठौडांरी वंशावली, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
१७. सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्यग्रन्थसूची, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
१८. मीरां-बृहत्-पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।
१९. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग ३, संपादक–श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी।
२०. सूरजप्रकास, भाग ३, कविया करणीदानकृत सम्पा०–श्रीसीताराम लाळस।
२१. रुक्मिणी-हरण, सांयांजी झूला कृत, सम्पा० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम.ए.,सा.रत्न
२२. सन्त कवि रज्जब : सम्प्रदाय और साहित्य डॉ० व्रजलाल वर्मा।
२३. पश्चिमी भारत की यात्रा, कर्नल जेम्स टॉड, हिन्दी अनु० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए.
२४. बुद्धिविलास, बखतराम शाहकृत, सम्पा०–श्रीपद्मधर पाठक, एम. ए.

अंग्रेजी

25. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Part I, R.O.RI. (Jodhpur Collection), ed., by Padamashree Jinvijaya Muni, Puratattvacharya.
26. A List of Rare and Reference Books in the R.O.R.I., Jodhpur, compiled by P.D. Pathak, M.A.

विशेष– पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है।

Acc. No. 31782
Date 12.6.64